Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

(अभ्यास प्रश्न व उनके मॉडल उत्तर)

प्रश्नपत्र–2

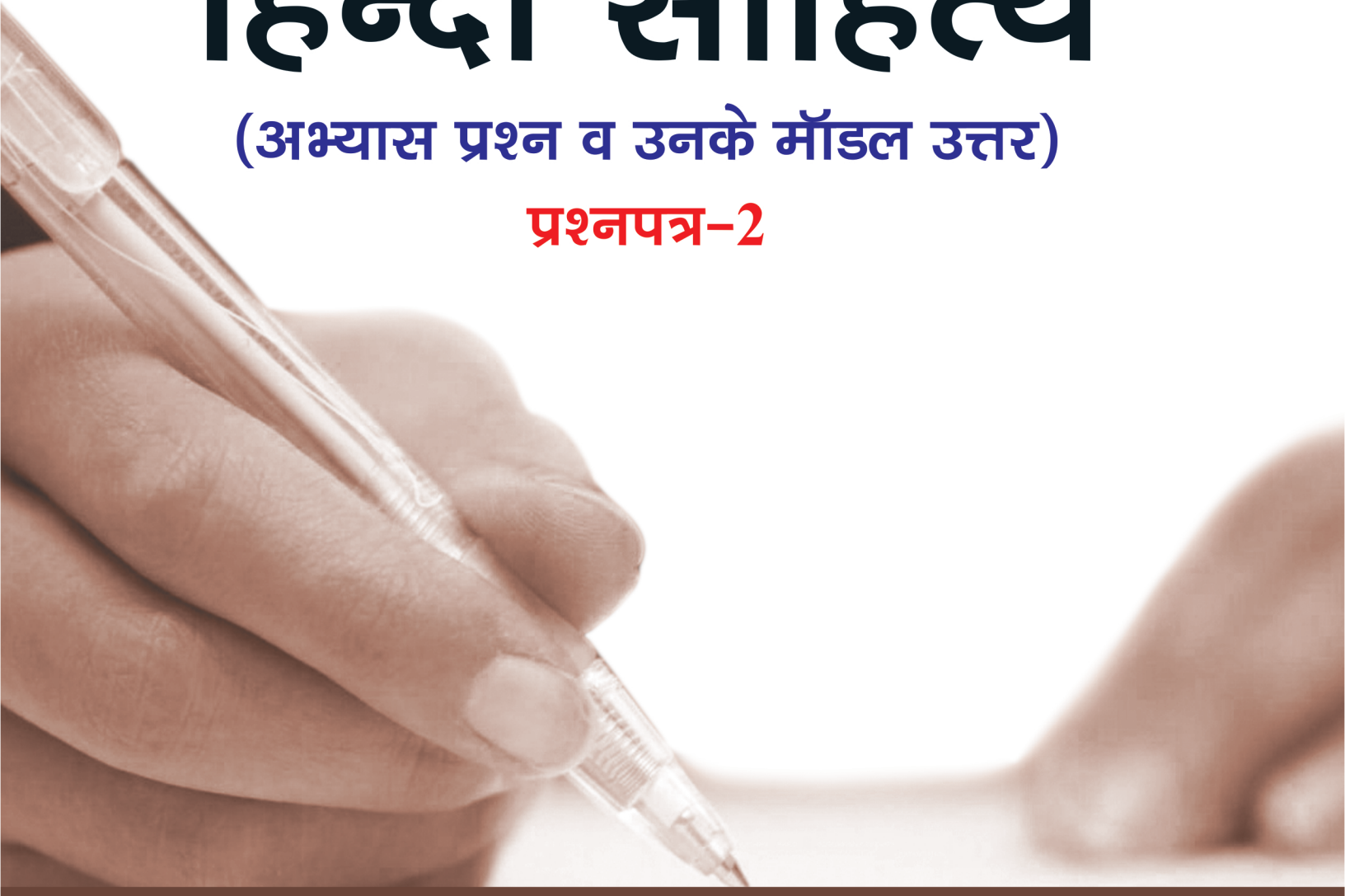

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHL10

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

(अभ्यास प्रश्न व उनके मॉडल उत्तर)

प्रश्नपत्र–2

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

विषय सूची (Contents)

खण्ड-क

1.	कबीर	5-12
2.	जायसी	12-16
3.	सूरदास	16-23
4.	तुलसीदास	23-28
5.	बिहारी	28-33
6.	भारत-भारती	33-34
7.	राम की शक्तिपूजा	34-41
8.	कामायनी	41-44
9.	कुरुक्षेत्र	44-46
10.	असाध्य वीणा	46-51
11.	ब्रह्मराक्षस	51-54
12.	हरिजन गाथा, बादल को घिरते देखा है, अकाल और उसके बाद	54-58
व्याख्या- भाग		**58-92**

खण्ड-ख

13.	गोदान	92-100
14.	दिव्या	100-105
15.	मैला आँचल	106-111
16.	महाभोज	111-113

17. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ 113-116

18. एक दुनिया समानांतर 116-120

19. भारत दुर्दशा 120-123

20. स्कन्दगुप्त 123-129

21. आषाढ़ का एक दिन 129-134

22. चिंतामणि 134-139

23. निबंध निलय 139-146

व्याख्या- भाग **146-172**

खण्ड-क

कबीर

प्रश्नः 'कबीर एक महान संत और समाज-सुधारक ही नहीं, अद्वितीय कवि भी हैं।' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में उन विशेषताओं का निर्देश कीजिए जो कबीर के काव्य की अद्वितीयता के कारण हैं। (300 शब्द)

उत्तरः कबीर एक साथ एक महान संत, समाज सुधारक और अद्वितीय कवि हैं। शुक्ल जी ने उन्हें मूलतः उपदेशक माना है जो ठोक-पीटकर कवि हो गए हैं तो द्विवेदी जी ने उनके भक्त रूप पर बल दिया है और उनके व्यक्तित्व के अन्य सभी पक्षों को 'घलुआ' मात्र माना है। अभी हाल ही में डॉ. धर्मवीर ने कबीर को समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। कबीर का मूल व्यक्तित्व कुछ भी हो उनके काव्य की श्रेष्ठता में कोई संदेह नहीं और कई मायनों में तो यह अद्वितीय है। कबीर के काव्य में साफगोई, क्रांतिकारी तेवर, भावनात्मक रहस्यवाद की तड़प, भाषा की सरलता और विविध काव्य विषयों की एक-साथ उपस्थिति इसे अद्वितीय बनाती है।

कबीर की साधनात्मक रहस्यवाद की कविताएँ उच्च कोटि की नहीं कही जा सकतीं परंतु भावनात्मक रहस्यवाद की कविताओं में मिलन की जो तड़प दिखती है वह अद्वितीय है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, तलफ-तलफ कै भौर किया।।

सूफियाना भाव की ऐसी कविताएँ भावना की चरम तन्मयता को छूती हैं। कबीर यदि भक्त के रूप में लीन होकर मिलन व विरह के भावों को अपनी वाणी में संजोते हैं तो दूसरी ओर उनका एक समाज सुधारक और उपदेशक का रूप भी है जो समाज की समस्याओं की खबर आक्रामक होकर लेता है। कबीर की कविता में यह आक्रामकता उनकी गहन प्रतिबद्धता से उपजी है। वे स्वयं कहते हैं:

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारों तासु का जो चले हमारे साथ।।

घरफूंक साहस से उत्पन्न यह आक्रामकता कबीर की वाणी को वह धार देती है जो समाज में कुरीतियों और शास्त्रवाद के मकड़जाल को काट सके और सांप्रदायिकता पर चोट कर सके।

खास बात ये है कि कबीर की सारी आक्रामकता बेहद सरल और सहज भाषा में (उलटबांसियों तथा साधनात्मक रहस्यवाद से जुड़ी कविताओं को छोड़कर) अभिव्यक्त हुई है। उनका शब्द चयन भी बेहद सटीक है।

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आपहुं शीतल होय।।

कबीर सचेत कवि नहीं थे उन्होंने कहा भी है 'जिन तुम जान्यो गीति हैं, वह निज ब्रह्म विचार'। इसलिए काव्य-शास्त्रीय पैमाने पर उन्हें कई बार कमतर आंका गया है। किंतु यदि यह माना जाए कि कविता के अनुसार प्रतिमान होने चाहिए न कि प्रतिमानों के अनुसार कविता तो हम पाते हैं कि कबीर की कविताएँ किसी महाकवि की अद्वितीय कविताएँ ही हैं। सामाजिक कविताओं में उनकी व्यंग्य क्षमता उन्हें हिन्दी साहित्य में सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है तो ईश्वर मिलन से संबंधित कविताओं की मधुरता और भावुकता बिहारी जैसे श्रृंगारिक कवियों की कविताओं पर भी भारी पड़ती है। शिल्प की दृष्टि से देखें तो वे वाणी के डिक्टेटर हैं ही।

प्रश्नः कबीर के काव्य में निहित रहस्यवाद के प्रेममूलक, साधनामूलक एवं अभिव्यक्तिमूलक रूप पर प्रकाश डालिए। (300 शब्द)

उत्तरः रहस्यवाद कबीर के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। उनके काव्य में रहस्यवाद के तीन रूप दिखाई देते हैं-

1. प्रेममूलक रहस्यवाद
2. साधनामूलक रहस्यवाद
3. अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद

कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम में विरह की अतिशयता की व्यंजना के लिये मुख्य रूप से तीन प्रतीक चुने हैं- सती, शूरत्व और रसायन। इनके अतिरिक्त उनके काव्य में काल या मृत्यु संबंधी प्रतीकों, दैनिक जीवन के प्रतीकों, पारिवारिक- सामाजिक संबंधों के प्रतीकों, संख्यावाची प्रतीकों आदि का प्रयोग हुआ है। अमानवीय संसार से लिये गए प्रतीकों में पशु-पक्षियों को लिया गया है। उदाहरणार्थ काग तृष्णा का, खग आत्मा का, कबूतर मोह का प्रतीक है।

समग्रतः हम कह सकते हैं कि कबीर का प्रतीक-विधान लोकजीवन से निर्मित हुआ है। यह जीवन से उनके गहरे जुड़ाव तथा उनकी काव्यात्मक क्षमता, दोनों का परिचायक है।

जायसी

प्रश्नः 'जायसी द्वारा प्रस्तुत नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य की अद्वितीय रचना है'- इस विचार से आप कहाँ तक सहमत हैं? (300 शब्द)

उत्तरः शुक्लजी ने जायसी द्वारा प्रस्तुत नागमती के विरह-वर्णन को हिन्दी साहित्य की अद्वितीय रचना माना है। जायसी द्वारा प्रस्तुत नागमती का विरह वर्णन बेहद रमणीय, सुंदर व मार्मिक है। इस विरह-वर्णन में उन्होंने कुछ ऐसे तत्वों का समावेश किया है कि यह वर्णन हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ विरह वर्णन के रूप में स्वीकृत हो गया है।

नागमती के विरह वर्णन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें नागमती को रानी के रूप में नहीं बल्कि विरहदग्ध सामान्य नारी के रूप में वर्णित किया गया है। इसलिए नागमती के विरह में साधारणीकरण की अद्‌भुत क्षमता आ गई है।

नागमती के विरह वर्णन की दूसरी बड़ी विशेषता है- आत्मविस्तार। जो नागमती कभी बड़े-बड़े राजाओं पर भी ध्यान नहीं देती थी, वही पक्षियों से भी अपनी हृदय वेदना कहती है-

"पिउ सों कहेउ संदेसड़ा, हे भौंरा, हे काग।
सो धनि विरहे जरि मुई, तेहिक धुआँ हमहिं लाग।।"

नागमती के वियोग में गार्हस्थिक चेतना का अद्‌भुत समावेश है। साथ ही, यह अपनी प्रतिबद्धता में भी अनूठा है। अपने पति के दायित्वहीन व्यवहार के बावजूद वह अपने प्रेम में पूरी तरह दृढ़ है। वह कहती है-

"यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव।।"

स्पष्ट है कि शृंगार के वियोग पक्ष का वर्णन जायसी पूर्ण रमणीयता और मार्मिकता के साथ करने में सफल हुए हैं। हालाँकि, यदि आधुनिक दृष्टिकोण से देखें तो आचार्य शुक्त के निष्कर्षों से सहमत होना कठिन प्रतीत होता है। यह बात सही है कि नागमती का विरह गार्हस्थिक विरह है, न कि देह की भूख या वासना की आकुलता से उत्पन्न होने वाला विरह। फिर भी, इस विरह में मध्यकालीन नारी की दासता तथा विषम स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण भी दिखाई देता है। कुल मिलाकर, यह मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि अपनी अद्‌भुत साधारणीकरण क्षमता, अपनी व्यापकता तथा प्रेम की प्रतिबद्धता आदि तत्वों के कारण नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में सचमुच एक अद्वितीय वस्तु है।

प्रश्नः एक त्रासदी काव्य के रूप में पदमावत का परीक्षण कीजिए। (300 शब्द)

उत्तरः आलोचक विजयदेव नारायण साही ने अपनी पुस्तक 'जायसी' में दावा किया है कि "अपनी मूल प्रकृति में पद्‌मावत एक त्रासदी है." ट्रैजेडी यूनान की प्राचीन नाट्य विधा है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह चरम दुख की त्रासद परिणति पर समाप्त होती है और पाठक को दुख की उस घनीभूत अवस्था में छोड़ती है जिसे 'विरेचन' (Catharsis) कहा जाता है। इसकी अन्य विशेषताओं में नायक का भद्र होना (अर्थात् दृढ़, साहसी और नैतिक होना); खलनायक का अनैतिक होना, नायक का अति नैतिकता के कारण कोई ऐसी भूल अर्थात् 'हैमर्शिया' कर बैठना जो उसे दुखद अंत तक पहुँचाती हो इत्यादि प्रमुख हैं।

वस्तुत: पद्मावती की समीक्षा में समकालीन सहमति इसी बात पर है कि यह एक 'प्रकृत काव्य' है जिसमें प्रस्तुत कथा ही मूलत: अभिप्रेत है; अप्रस्तुत अर्थ एकदम गौण है व कहीं-कहीं झलक दिखाकर लुप्त हो जाता है। फिर भी, यदि समासोक्ति और अन्योक्ति के विकल्पों में से ही चयन करना हो तो इसे समासोक्ति के निकट मानना अधिक उचित होगा।

प्रश्न: पद्मावत कितना इतिहास है और कितनी कल्पना? विवेचनात्मक उत्तर दीजिये। **(300 शब्द)**

उत्तर: कोई भी रचना अपने कथानक का निर्माण तीन आधारों पर कर सकती है- (i) वह इतिहास से कथा ग्रहण करे, (ii) उसकी कथा शुद्ध रूप से कल्पना पर आधारित हो, (iii) रचना इतिहास और कल्पना के मिश्रण से कथा का निर्माण करे। पद्मावत के संबंध में प्रश्न उठता है कि इसकी कथा ऐतिहासिक है, काल्पनिक है या इतिहास व कल्पना का मिश्रण है?

पद्मावत की ऐतिहासिकता का विश्लेषण इसके दो भागों के आधार पर किया जा सकता है। पहले भाग में रत्नसेन और पद्मावती की प्रेम कथा है जो दोनों के विवाह तक चलती है। दूसरे भाग में इन दोनों के चित्तौड़ लौटने के बाद की कथा है। ध्यान से देखें तो कथानक का पहला भाग काल्पनिक है जबकि दूसरा भाग इतिहास और कल्पना के मिश्रण पर आधारित है।

कथानक के पहले भाग में जो कहानी ली गई है, उसका संबंध इतिहास से नहीं, लोक-आख्यान से है। इस कथा के पहले भाग में कई ऐसी बातें हैं जो न इतिहास-सम्मत हैं और न हो सकती हैं। जो कहानी परंपरा से लोक जीवन में चली आ रही थी, उसमें भी जायसी ने परिवर्तन किए हैं। उदाहरण के लिये, जायसी ने पद्मावती को सिंहलद्वीप का निवासी बताया है जबकि लोक कथा में ऐसा नहीं है।

पद्मावत के दूसरे भाग में ऐतिहासिकता के कुछ संदर्भ विद्यमान हैं। कर्नल टाड के अनुसार चित्तौड़ के राजा का नाम 'भीमसिंह' या 'भीमसी' था जबकि 'आइने-अकबरी' में 'रत्नसी' या 'रत्नसेन' नाम का उल्लेख है। दोनों ही संस्करण मानते हैं कि उक्त राजा की 'पद्मिनी' नाम की एक सुंदर रानी थी। दोनों संस्करण यह भी मानते हैं कि अलाउद्दीन ने इस राजा पर दो आक्रमण किए।

किंतु, कथानक के इस दूसरे भाग में कुछ कल्पनाएँ भी हैं और ये किसी न किसी कारणवश ही आई हैं। उदाहरण के लिये, राघवचेतन की कथा काल्पनिक है जिसका प्रयोग इसलिये किया गया है कि अलाउद्दीन के आक्रमण की कथा जोड़ी जा सके। दूसरी कल्पना रत्नसेन का अलाउद्दीन को अपनी पत्नी देखने की अनुमति न देना है। जायसी ने ऐसा इसलिये किया क्योंकि नायक के लिये खलनायक को अपनी पत्नी देखने की अनुमति देना गौरवपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि दर्पण में अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी (पद्मावती) को देखने की कथा जायसी ने आकस्मिक घटना के रूप में प्रस्तुत की है, इसके लिये संधि का सहारा नहीं लिया। जब राजा को बंदी बनाकर दिल्ली शिविर में रखा गया तो समय निकालकर जायसी ने गोरा-बादल की वीरगाथा तथा देवपाल का प्रसंग भी कल्पना से उपस्थित किया ताकि पाठक को उत्साह भाव व वीर रस की अनुभूति कराई जा सके।

समग्रत: हम कह सकते हैं कि पद्मावत का पहला अंश लोकश्रुति तथा दूसरा भाग इतिहास पर आधारित है। दोनों ही खंडों में कल्पना का अच्छा प्रयोग है। पहले खंड की कल्पनाएँ प्रधानत: 'तसव्वुफ' या सूफी आध्यात्मिकता को व्यक्त करने के लिये की गई हैं जबकि दूसरे खंड की कल्पनाएँ लौकिक कथा को नाटकीय मोड़ व औचित्यपूर्ण समाधान देने के लिये आई हैं। कल्पना का यह प्रयोग पद्मावत की शक्ति है क्योंकि पद्मावत अंतत: इतिहास नहीं, साहित्य है और साहित्य का निर्माण तथ्यों से नहीं, कल्पनाओं से होता है।

सूरदास

प्रश्न: सूर की काव्य-कला पर प्रकाश डालिए। **(300 शब्द)**

उत्तर: सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के अन्यतम कवि हैं। इन्होंने शृंगार तथा वात्सल्य रस का कोना कोना छान मारा है। शृंगार व वात्सल्य के इस सूक्ष्म अवलोकन में इनकी काव्यकलागत निपुणता विशेष रूप से सहायक हुई है। सूर की कविता की विषयवस्तु अत्यंत सीमित है भाव के रूप में केवल शृंगार व वात्सल्य है और विभाव पक्ष में आलंबन विभाव में कृष्ण, राधा, गोपियाँ और उद्दीपन विभाव में यमुना तट तथा मधुवन। इसलिए सूर के पास अपनी कविता को मनोहर बनाने का उसे

सूर की गोपियाँ अपने उपालम्भ में कृष्ण की भ्रमर वृत्ति को निशाना बनाती हैं। उन्हें दुख है कि एक तो कृष्ण उनसे मिलने तो नहीं आ रहे हैं; ऊपर से उद्धव को भेजकर उन्हें योग संदेश सिखाना चाहते हैं ताकि वे प्रेम-क्षमता से ही वंचित हो जाएँ। वे नाराज़गी से भरकर उद्धव से कहती हैं-

"हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
इक अति चतुर हुते पहले ही, अरु करि नेह दिखाए।
जानी बुद्धि बड़ी जुवतिन को, जोग संदेस पठाए।"

गोपियाँ उद्धव के प्रति भी तीखे व्यंग्य करती हैं-

"आयो घोष बड़ो व्यापारी।
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी।"

गोपियाँ प्रकृति और नगरीय जीवन के प्रति भी उलाहना करती हैं-

"वह मथुरा काजर की कोठरी, जे आवहिं ते कारे।"

सूर के उपालम्भ काव्य का मूल्यांकन करते हुए यह देखना भी ज़रूरी है कि हिन्दी के अन्य कवियों के यहाँ उपालम्भ की क्या स्थिति है? वस्तुत: अन्य कवियों के यहाँ कहीं-कहीं उपालम्भ की झलक चाहे मिल जाए किंतु न तो वह बहुत स्पष्ट है और न ही व्यापक।

सच यही है कि उपालंभ के क्षेत्र में जो अद्‌भुत सफलता सूर को मिली है, शेष कवि उसके आसपास भी नहीं पहुँच सके हैं। विस्तार और गहराई-दोनों दृष्टियों से सूर का 'उपालंभ' बेजोड़ है।

तुलसीदास

प्रश्न: गोस्वामी तुलसीदास की 'रामराज्य की परिकल्पना' पर प्रकाश डालिए। (300 शब्द)

उत्तर: तुलसी की रामराज्य की परिकल्पना उनकी राजनीतिक प्रगतिशीलता का सर्वोच्च प्रमाण है। भक्तिकाल के अन्य कवि अपनी तमाम प्रगतिशीलता के बावजूद राजनीतिक व्यवस्था के प्रश्न पर मौन हैं। परंतु तुलसी इसके प्रति मुखर हैं। वे वर्तमान व्यवस्था के आलोचक हैं (साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल) और इस व्यवस्था के शासकों को भले ही इहलोक में दंड न दे पायें परंतु परलोक मे उनके लिए दंड की व्यवस्था करते हैं:

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नर अवस नरक अधिकारी।।"

परंतु कवि का दायित्व केवल वर्तमान व्यवस्था की आलोचना करके समाप्त नहीं हो जाता। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह जिस व्यवस्था की आलोचना कर रहा है उसका विकल्प भी प्रस्तुत करे। तुलसी ने यह विकल्प रामराज्य के रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी का रामराज्य केवल राजनीतिक सिद्धांत नहीं है बल्कि ऐसी अवस्था है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति संपूर्ण सार्थकता के साथ जीता है।

रामराज्य एकदेशीय धारणा नहीं है रामराज्य सारे संसार में एक साथ है- "भूमि सप्त सागर मेखला एक भूप रघुपति कोसला"। साथ-साथ यह एक कल्याणकारी राज्य भी है। रामराज्य में सभी नर और नारी धर्म में रत हैं और किसी को रोग, रोष, दोष या दु:ख नहीं है और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ सभी को सुलभ हैं। सभी को परेशान करने वाले त्रय ताप (दैहिक, दैविक भौतिक तापा) रामराज्य में किसी को परेशान नहीं करते (राम राज्य काहुहिं नहीं व्यापा)।

राम राज्य में चारों ओर समृद्धि ही समृद्धि है एवं कहीं भी कोई व्यक्ति किसी प्रकार के ताप-संताप से दुखी नहीं है-

"अल्प मृत्यु नहिं कविनिऊँ पीरा।
सब सुंदर सब विरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दु:खी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।"

राजनीतिक धरातल पर उन्होंने राजा व प्रजा के कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हुए दोनों के सम्यक् संबंध की व्यवस्था कर राजा व प्रजा के बीच समन्वय स्थापित किया। जब वे 'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना' कहते हैं तो आर्थिक स्तर पर भी उनकी समन्वय भावना दिखाई देती है। भाषा के धरातल पर भी उन्होंने संस्कृत और लोकभाषा का अद्‌भुत समन्वय किया। समग्रत: तुलसीदास समन्वय की विराट चेष्टा करने वाले कवि हैं। उनकी इस समन्वय-भावना ने मध्यकाल के बिखरते हुए समाज को बाँधने का महत् कार्य तो किया ही, भविष्य के लिये भी एक समाज-दृष्टि प्रदान की।

निश्चित रूप से गोस्वामी तुलसीदास लोकनायकत्व की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

बिहारी

प्रश्न: सतसई परम्परा में बिहारी सतसई का स्थान निर्धारित कीजिए। **(300 शब्द)**

उत्तर: भारतीय साहित्य परंपरा में साहित्यिक रचनाओं के संख्यामूलक नामकरण की प्रवृत्ति आरंभ से ही दिखाई पड़ती है, जिसके बहुत से उदाहरण हैं, जैसे- 'बेताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'हनुमान चालीसा' 'उद्धव शतक' आदि। इसी तरह की रचनाओं में एक विस्तृत रचना 'सतसई' कहलाती है जो संस्कृत 'सप्तशती' शब्द का तद्‌भव रूप है। संस्कृत में गोवर्धनाचार्य ने 'आर्यासप्तशती' की रचना की और प्राकृत में राजा हाल सातवाहन ने 'गाथा सप्तशती' या 'गाहा सतसई' की रचना की। इन रचनाओं के प्रभाव के कारण हिन्दी साहित्य में भी सतसई परंपरा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसकी शुरुआत का श्रेय 'तुलसी सतसई' के रचयिता महाकवि तुलसीदास को प्राप्त है। मध्यकाल में लिखी गई कुछ अन्य प्रमुख सतसई रचनाएँ हैं- 'वृन्द सतसई', 'भूपति सतसई', 'रहीम सतसई', 'मतिराम सतसई', 'विक्रम सतसई' इत्यादि।

सतसई परंपरा में 'बिहारी सतसई' को निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ रचना माना जाता है। इसका प्रमाण यह है कि 'बिहारी सतसई' की रचना के बाद इसकी प्रसिद्धि इतनी बढ़ती गई कि धीरे-धीरे 'सतसई' संज्ञा 'बिहारी सतसई' के लिए ही रूढ़ हो गई। एक प्रसिद्ध लोककथन 'सतसई' के इसी महत्व को प्रमाणित करता है-

"सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर,
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर।"

सतसई परंपरा में 'बिहारी सतसई' के सर्वश्रेष्ठ होने के मुख्यत: दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि जहाँ अन्य सतसइयाँ किसी एक विषय को लेकर चली हैं, वहीं 'बिहारी सतसई' में चमत्कृत कर देने वाला विषय-वैविध्य है। 'बिहारी सतसई' में शृंगार की केंद्रीयता के साथ-साथ भक्ति के दोहे भी हैं, धार्मिक आडंबरों और सामाजिक अव्यवस्थाओं पर व्यंग्य भी हैं, कुछ मात्रा में राजनीतिक चिंताएँ भी हैं।

'बिहारी सतसई' की उत्कृष्टता का दूसरा कारण यह है कि यह शिल्प की दृष्टि से भी बाकी सतसइयों पर भारी पड़ती है। ब्रजभाषा में सूरदास ने जो संगीतात्मकता और तन्मयता पैदा की थी, उसे पूर्णता तक बिहारी ने ही पहुँचाया है। भाषा की समाहार क्षमता, शब्दों का बहुलअर्थी प्रयोग, अनुभाव विधान की बारीकियाँ, अलंकारों का चमत्कारी प्रयोग और बिंबों की मर्मस्पर्शी योजना- ये सभी विशेषताएँ शिल्प की दृष्टि से इसे 'सतसई परंपरा' की महानतम कृति बना देती हैं। संभवत: इसीलिए ग्रियर्सन को कहना पड़ा कि पूरे यूरोप में एक भी रचना बिहारी सतसई की टक्कर की नहीं है।

प्रश्न: बिहारी की बिंब-योजना पर प्रकाश डालिए। **(300 शब्द)**

उत्तर: बिहारी जिस संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाकर चले हैं, उसमें बिंब की कोई स्पष्ट धारणा मौजूद नहीं थी। इसके बावजूद, कोई भी सजग कवि यह समझता है कि कविता सिर्फ मस्तिष्क तक पहुँचे तो प्रभावशून्य होती है। उसका प्रभाव तभी सघन होता है जब वह पाठक के भीतर ऐन्द्रिक चित्रों की शृंखला निर्मित कर दे, पाठक की सारी चेतन शक्तियों को कविता के आस्वादन में डुबा सके।

इसी कारण बिहारी के काव्य में बिंब कदम-कदम पर नज़र आते हैं। उनका एक भी दोहा ऐसा नहीं मिलता जिसमें बिंबों का चमत्कार नज़र न आता हो। निम्नलिखित दोहा उनकी बिंब योजना का चरम उदाहरण माना जाता है-

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात,
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सों बात।"

लोकवृत्त के ज्ञान के स्तर पर बिहारी की रचनाओं में सर्वांगीण जीवन का चित्रण मिलता है। कहीं वे राजनीति, राजधर्म के विषय में अपना मत व्यक्त करते हैं, कहीं लोक-जीवन के विषय में, तो कही समाज, कहीं कर्मकाण्ड, कहीं नीति तथा मनोविज्ञान, तो कहीं परम्पराओं का, युद्धों का जो विशद तथा व्यापक वर्णन बिहारी की सतसई में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

बिहारी की रचनाओं पर दृष्टिपात करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे एक बहुश्रुत कवि हैं। उपर्युक्त विवेचित सभी विषयों में उनकी गहरी पकड़ थी- ऐसा कहना तो संभव नहीं, किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता कि विविध ज्ञानानुशासनों एवं जीवनानुभवों से वे उतना परिचित अवश्य थे जितना कि एक सजग रचनाकार से अपेक्षा की जाती है और इस दृष्टि से हम उन्हें एक बहुज्ञ कवि मान सकते हैं।

भारत-भारती

प्रश्नः भारत-भारती में निहित नवजागरण-चेतना पर प्रकाश डालिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः हिन्दी कविता में नवजागरण-चेतना की ठोस अभिव्यक्ति द्विवेदीयुगीन कविता में होनी आरंभ होती है और इसका सबसे प्रबल स्वर मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में सुनाई देता है। इस स्वर का प्रथम सशक्त उदाहरण उनका काव्य 'भारत-भारती' है जो नवजागरण की विभिन्न विशेषताओं स्वचेतनता, आत्मावलोकन, यथार्थबोध, अतीत के उज्ज्वल पक्षों के प्रति गौरव-भावना, प्रगतिशील चेतना आदि को अपने भीतर धारण करता है।

'भारत-भारती' तीन खंडों- अतीत खंड, वर्तमान खंड तथा भविष्यत् खंड के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त ने 'हम कौन थे', 'क्या हो गए हैं' और 'क्या होंगे अभी' इन तीन प्रश्नों का सूक्ष्म विवेचन किया है। मूल चिन्ता यह है कि जिस भारत का अतीत इतना गौरवपूर्ण है, वही आज इतना दुर्दशाग्रस्त क्यों है?

'अतीत खंड' में मैथिलीशरण गुप्त ने भारतवर्ष के प्राचीनकाल में ज्ञान और सभ्यता के विकसित रूप, सांस्कृतिक मूल्यों की उत्कृष्टता और विभिन्न स्तरों पर संपन्नता को रेखांकित किया है-

"संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?/उसका कि जो ऋषिभूमि है वह कौन भारत वर्ष है।"

हालाँकि मैथिलीशरण गुप्त की इतिहास दृष्टि पर आर्य-केन्द्रित एवं हिन्दूवादी होने का आरोप लगाया गया है लेकिन कतिपय सीमाओं के बावजूद उनकी प्रगतिशीलता को अस्वीकार्य नहीं किया जा सकता।

भारत-भारती का दूसरा खंड 'वर्तमान खंड' गहरे आत्मावलोकन और वास्तविकताओं के चित्रण से युक्त है कवि ने भारत की वर्तमान दुर्दशा के चित्र उपस्थित करते हुए उसके कारणों के रूप में धार्मिक आडंबर एवं पाखंड, पंडितों की अज्ञानता, क्षत्रियों की विषयोन्मुखता, वैश्यों के लालच, बेमेल विवाह, नशेबाजी, अंधविश्वास आदि का उद्घाटन किया है। इसके साथ ही उनकी दृष्टि अंग्रेजों की आर्थिक-शोषण की नीति, देश विरोधी शिक्षा-नीति, किसानों की दुर्दशा आदि पर भी गई है।

'भविष्य खंड' में मैथिलीशरण गुप्त ने देश की जागृति तथा परिवर्तन पर बल दिया है।

हम कह सकते हैं कि हिन्दी कविता में 'भारत भारती' नवजागरण चेतना की प्रथम सशक्त अभिव्यक्ति है।

प्रश्नः संवेदना के धरातल पर भारत-भारती की सीमाओं को रेखांकित कीजिए। **(225 शब्द)**

उत्तरः 'भारत-भारती' अपने समय में राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधन की दृष्टि से अत्यंत सफल कविता साबित हुई। हालांकि सूक्ष्म विश्लेषण करने पर उसकी संवेदना कुछ सीमाओं से ग्रस्त दिखाई पड़ती है-

1. अंग्रेज़ों की आलोचना तो पर्याप्त की गई है; उनके राज्य के समय जो गरीबी व अकाल जैसी स्थितियाँ हैं, उन पर भी गुप्त जी ने पर्याप्त लिखा है; किन्तु पूरी रचना में कहीं भी गरीबी इत्यादि समस्याओं के कारण के तौर पर अंग्रेज़ों की पहचान स्पष्ट रूप से नहीं की गई है। इसीलिए कई विचारकों ने इस रचना पर प्रखर राष्ट्रीय भावना न होने का

आरोप लगाया है। किन्तु यह उनकी सीमा न होकर उनकी रणनीति भी हो सकती है। गुप्त जी को एक ओर पुस्तक को प्रतिबंध से बचाना था तो दूसरी ओर राष्ट्र का उद्‌बोधन करना था। संभवत: इसीलिए अंग्रेज़ों का विरोध साफ तौर पर नहीं किया गया।

2. 'भारत-भारती' अपने समय के आंदोलनों को भी वर्णित नहीं करती। यह वही समय है जब कांग्रेस का महत्व बढ़ता जा रहा था। बंगभंग व स्वदेशी आंदोलन हो चुके थे। तिलक स्वराज्य का नारा दे चुके थे और क्रांतिकारी आतंकवाद का पहला दौर भी आ चुका था। ये सभी प्रसंग भारत-भारती में नदारद हैं। पर इसका कारण शायद यह है कि गुप्त जी अतीत व वर्तमान में गहरा कंट्रास्ट दिखाना चाहते थे। यदि वे इन सभी घटनाओं का ज़िक्र करते तो संभवत: वह नाटकीय अन्तर्विरोध उभर नहीं पाता, जो पाठक की चेतना को झकझोर सके।
3. गुप्त जी की मूल दृष्टि वैष्णवी संस्कारों से निर्मित है। इसलिए समाज के सभी वर्गों के प्रति उनकी संवेदनशीलता विकसित नहीं हो पाती।
4. उनका इतिहास बोध अतीत-मोहग्रस्तता, रोमानियत तथा एकआयामी मानसिकता से ग्रस्त है।

राम की शक्तिपूजा

प्रश्न: शक्ति-काव्य के प्रतिमान के रूप में 'राम की शक्ति-पूजा' पर विचार कीजिए। (225 शब्द)

उत्तर: छायावादी काव्य पर एक आक्षेप यह है कि यह पलायन का काव्य है। डॉ. नामवर सिंह और डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे समीक्षकों ने इस आरोप को खारिज किया है। चतुर्वेदी जी ने तो छायावाद को 'शक्ति चेतना का उत्स' कहा है। इसी परंपरा में डॉ. निर्मला जैन ने एक महत्वपूर्ण लेख 'शक्ति काव्य का प्रतिमान: राम की शक्तिपूजा' में सिद्ध किया है कि 'राम की शक्तिपूजा' शक्ति-काव्य की कसौटी है।

शक्ति काव्य की मूल कसौटी है कि कविता में ओज गुण तथा उत्साह जैसे भावों की अधिकता होनी चाहिए, न कि निराशा या पलायन जैसे भावों की। पाश्चात्य साहित्य चिंतक डंटन ने माना है कि शक्ति काव्य में परस्पर विरोधी भावों की सघन उपस्थिति होती है जिसे आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'विरुद्धों का सामंजस्य' भी कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त, कविता की भाषा शैली ऐसी होनी चाहिए कि वह ओज गुण को धारण कर सके।

छायावाद की अधिकांश कविताएँ शक्ति चेतना से युक्त हैं या नहीं, इस प्रश्न पर तो विवाद हो सकता है; किंतु राम की शक्तिपूजा ऐसे विवादों की गुंजाइश नहीं छोड़ती। निम्नलिखित विशेषताएँ इसे शक्ति काव्य का प्रतिमान सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं-

(क) ओज गुण की सघन उपस्थिति। (ख) निराशा और आशा तथा प्रकाश और अंधेरे में चरम द्वंद्व। (ग) ओज गुण की प्रस्तुति के लिए तत्सम शैली तथा नाद-योजना का सघन प्रयोग। (घ) इस कविता की मूल समस्या भी शक्ति पर ही केंद्रित है। समस्या है 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति' जबकि समाधान है 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना'। इसके अतिरिक्त, 'शक्ति की दृढ़ साधना' इसके कथानक का सबसे महत्वपूर्ण अंश है।

ये सारे तत्व इसे शक्ति काव्य का प्रतिमान सिद्ध करते हैं।

प्रश्न: 'राम की शक्तिपूजा' की भाषा पर विचार कीजिए। (300 शब्द)

उत्तर: हिन्दी के छायावादी कवियों का एक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने शुष्क सी प्रतीत होने वाली खड़ी बोली को एक समृद्ध व लोचशील काव्यभाषा में रूपांतरित कर दिया। इस दृष्टि से छायावाद के चारों कवियों में निराला सबसे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उन्होंने भाषा को लेकर सर्वाधिक प्रयोग किए हैं। 'राम की शक्तिपूजा' उनके भाषायी प्रयोगों की सिद्धावस्था है।

इस कविता की भाषा मूल प्रकृति में तत्सम-बहुला है जिसका कारण यह है कि पौराणिक-मिथकीय प्रसंग व उसमें निहित ओज को शायद ऐसी ही भाषा में व्यक्त करना संभव था। कहीं-कहीं यह तत्सम-बहुला भाषा समास-गुण को भी धारण करती है। किंतु, 'राम की शक्तिपूजा' की भाषा एक-आयामी नहीं है। यदि वह तत्सम पदावली पर ही अवलंबित होती

(क) कृतिवास के राम बांग्ला भावुकता से युक्त हैं। उनमें औदात्य, गरिमा जैसे तत्व नहीं दिखते। वे न केवल पराजय बोध से भरकर लगभग बीस बार रोये हैं, बल्कि उनका रुदन भी अनियंत्रित है। इसके विपरीत, निराला छायावादी होते हुए भी अनियंत्रित भावुकता के स्थान पर आत्मानुशासन से युक्त भावुकता का प्रदर्शन करते हैं। निराला के राम भावनाओं का संयमन करते हैं, न कि उत्कट अभिव्यक्ति।

(ख) कृतिवास रामायण में हनुमान प्रसंग उपस्थित नहीं है क्योंकि बंगाल की संस्कृति में दुर्गा का महत्व इतना अधिक है कि हनुमान की शक्ति को दुर्गा की शक्ति से अधिक दिखाना असंभव था। निराला पर बंगाल की शाक्त परंपरा का कम, वैष्णव परम्परा का प्रभाव ज्यादा है। शायद इसीलिए उन्होंने हनुमान की शक्ति को ज्यादा बताया है।

(ग) कृतिवास रामायण में शक्ति का पारम्परिक रूप उपस्थित है जबकि यहाँ शक्ति की कल्पना प्रकृति के रूप में की गई है। प्रकृति प्रेम की यह कल्पना छायावाद व नव्य-वेदांत से प्रेरित दिखाई पड़ती है।

(घ) कृतिवास रामायण में शक्ति की पूजा भक्ति या उपासना पद्धति से की गई है जबकि निराला ने इसके लिए हठयोग प्रक्रिया का सहारा लिया है।

(ङ) कृतिवास रामायण में शक्ति अन्ततः राम के पक्ष से संयुक्त होती है जबकि शक्तिपूजा में वह राम के मुख में लीन हो जाती है।

राम की शक्तिपूजा रामचरितमानस से भी कुछ मायनों में भिन्न है। तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम यहाँ 'नवीन पुरुषोत्तम' हो गए हैं। तुलसी के राम ईश्वर के अवतार हैं जबकि निराला के राम मानव। तुलसी के राम में संशय, विकलता आदि मानवोचित कमज़ोरियाँ अनुपस्थित हैं जबकि निराला के राम में उपस्थित। नारी संबंधी दृष्टिकोण में भी दोनों रचनाएँ भिन्न हैं। निराला के राम गार्हस्थिक प्रेम को अत्यधिक महत्व देते हैं।

प्रश्न है कि निराला ने पौराणिक आख्यान में इतनी कल्पनाएँ क्यों कीं? इसके कुछ निश्चित कारण हैं–

(क) पहला कारण है- उद्देश्य की भिन्नता। कृतिवास रामायण का उद्देश्य सिर्फ रामायण की प्रस्तुति करना था जबकि निराला पौराणिक आख्यान के माध्यम से संश्लिष्ट अर्थ सम्प्रेषित करना चाहते थे।

(ख) आत्म-अभिव्यक्ति करने की इच्छा भी एक बड़ा कारण है। छायावादी कवि होने के कारण निजता का संप्रेषण निराला के काव्य में दिखता ही है।

(ग) राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के संदर्भ में निराला संकेत देना चाहते थे कि शक्ति वस्तुतः जनता में ही निहित है। इसीलिए उन्होंने योग-पद्धति का प्रयोग किया जिसमें आंतरिक शक्ति का उद्बोधन होता है, ईश्वर से शक्ति मांगी नहीं जाती।

कामायनी

प्रश्नः कामायनी के अंगीरस का निर्णय कीजिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः अंगीरस से तात्पर्य मुख्य रस से होता है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार 'बहुव्याप्ति' वाले रस को ही सामान्यतः अंगीरस माना जाता है, लेकिन कभी-कभी यह लक्षण पर्याप्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में रचना के मुख्य पात्र की मूल प्रवृत्ति का प्रतिफलन कराने वाले अथवा रचना के अंत में उपलब्ध होने वाले रस को अंगी रस माना जाता है। कामायनी के अंगीरस का निर्णय इन्हीं कसौटियों के संदर्भ में किया जा सकता है।

बहुव्याप्ति के आधार पर विश्लेषण करें तो कामायनी में दो ही रस प्रमुख हैं -शृंगार तथा शांत। शृंगार रस व्याप्ति की दृष्टि से सर्वाधिक मात्रा में है। यह प्रमुखतः रचना के पूर्वार्ध में श्रद्धा-मनु के प्रणय-प्रसंग में आया है। रचना के उत्तरार्ध में भी श्रद्धा का थोड़ा सा विप्रलंभ शृंगार है। जहाँ तक इड़ा तथा मनु के संबंध का प्रश्न है उसे शृंगार रस के अंतर्गत स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि शृंगार की स्थिति आने से पूर्व ही वह समाप्त हो गया है। स्पष्ट है कि अधिक व्याप्ति के बावजूद यह रस रचना में इतना प्रमुख नहीं है कि इसे अंगीरस सहजतापूर्वक माना जा सके। फिर, कामायनी के अंत अर्थात् फलागम की स्थिति में भी शृंगार की उपस्थिति नहीं है।

बहुव्याप्ति की दृष्टि से कामायनी में शृंगार के उपरांत शांत रस की प्रमुखता दिखती है। 'चिंता' और 'निर्वेद' सर्गो में निर्वेदमूलक शांत रस है। किंतु, इसे अंगीरस मानना संभव नहीं है क्योंकि यह मात्रा में तो शृंगार की तुलना में काफी कम

'आशा' उत्पन्न होती है क्योंकि मानव-मन निराशा व आशा के द्वन्द्व से ही संरचित हुआ है। आशा के बाद धीरे-धीरे 'श्रद्धा' व आस्था जैसे भाव उत्पन्न होते हैं, जिन्हें श्रद्धा सर्ग में प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य की बाल्यावस्था में श्रद्धा जैसे भावों की उपस्थिति एक सहज स्थिति है। फिर जैसे-जैसे मन किशोरावस्था या युवावस्था में आता है, उसमें 'काम' व 'वासना' जैसे भाव स्वभावत: उत्पन्न होते हैं व वासनाजन्य 'लज्जा' भी उसके परिणामस्वरूप विकसित होती है। यही पूरी प्रक्रिया 'काम', 'वासना', 'लज्जा' जैसे सर्गों में दिखती है। इन भावों से मुक्त होकर मनुष्य बाहरी जीवन में उपलब्धियाँ अर्जित करना चाहता है। अब उसकी अधिकार भावना बढ़ती जाती है और वह श्रद्धा जैसे भावों से वंचित होकर अति बौद्धिकता व तार्किकता को महत्व देने लगता है। 'कर्म', 'ईर्ष्या' तथा 'इड़ा' सर्गों में मन की यही विकास-यात्रा प्रस्तुत हुई है। किन्तु, मन की अबाधित अधिकार भावना हर वस्तु को नियंत्रित कर लेना चाहती है जिसके परिणामस्वरूप उसे कठोर संघर्षों में पराजय झेलनी पड़ती है। 'संघर्ष' व 'निर्वेद' सर्गों में यही भाव व्यक्त हुआ है।

इसके बाद की कथा मानव-मन की स्वाभाविक कथा है या नहीं- इस प्रश्न पर विवाद है। प्रगतिवादी समीक्षकों की मान्यता है कि प्रसाद कथानक को जबरन अध्यात्म के क्षेत्र में खींचकर ले गए हैं। किन्तु, आदर्शवादी विचारकों की राय में अंतिम तीन सर्ग भी मानव-मन की विकास यात्रा के स्वाभाविक चरण हैं। सांसारिक द्वन्द्वों में लम्बे समय तक उलझे रहने के बाद मन यह समझ पाता है कि विषमताओं का अंतिम समाधान आध्यात्मिक उन्नयन में है। कामायनी के अंतिम तीन सर्ग 'दर्शन', 'रहस्य' तथा 'आनंद' मन की इसी आध्यात्मिक यात्रा का संकेत करते हैं।

कामायनी की प्रतीकात्मकता का दूसरा स्तर **मानव-इतिहास** के स्तर पर भी खुलता है। मानवता का सम्पूर्ण इतिहास 'चिंता' से ही शुरु होता है क्योंकि जब मानव सोचने-समझने की शक्ति से युक्त हुआ होगा तो जीवन में व्याप्त असुरक्षाओं ने उसे सचमुच चिंतित किया होगा। इसके बाद मनुष्य ने धीरे-धीरे प्रकृति के रहस्यों को समझते हुए 'आशा' महसूस की होगी। इसके तुरंत बाद वह समय आया होगा, जब उसने धर्म व ईश्वर जैसी धारणाएँ बनाई होंगी और उनके प्रति 'श्रद्धा' से भर उठा होगा। 'काम' व 'वासना' उसकी सहज प्रवृत्तियाँ थीं, किन्तु सामाजिक संरचनाओं के विकास की प्रक्रिया में 'लज्जा' जैसे भाव भी उसके जीवन का अंग बने होंगे। पूंजीवादी व्यवस्था ने सुविधाएँ तो एकत्रित कर दीं किन्तु मनुष्य की भूख निरंतर बढ़ती गई, जिसके परिणामस्वरूप 'संघर्ष' होना स्वाभाविक था। प्रत्येक व्यक्ति भौतिकता की इसी अंधी दौड़ में दौड़ता रहा और अंतत: विरोधी शक्तियों से पराजित हुआ क्योंकि तार्किकता पर किसी व्यक्ति विशेष का प्रभुत्व स्थापित नहीं होता। जो बुद्धि आज किसी के पक्ष में है, वह कल किसी और के पक्ष में हो सकती है। पूंजीवाद की यह अंधी दौड़ मनुष्य को अंतत: निराशा की उसी भाव-भूमि पर ले आती है, जहाँ से उसने वस्तुओं तथा भौतिक सुखों के संग्रह की कोशिश शुरु की थी। अब उसे समझ आता है कि वास्तविक आनन्द वस्तुओं के संग्रह में नहीं, बल्कि आत्मसाक्षात्कार में है, परमतत्व के रूप में स्वयं को पहचान लेने में है। यहाँ पुन: श्रद्धामूलक दृष्टि का विकास होता है और यही दृष्टिकोण उसे सुख-दुख के द्वैत से परे वास्तविक 'आनन्द' की स्थिति में ले जाता है।

स्पष्ट है कि कामायनी प्रतीकात्मक स्तर पर मानव-मन तथा मानवता के इतिहास की ही कथा है जिसे प्रसाद ने बेहद खूबसूरती से काव्य के तत्वों में गूंथ दिया है।

कुरुक्षेत्र

प्रश्न: दिनकर की कविता 'कुरुक्षेत्र' में व्यक्त 'मानवतावादी दर्शन' के स्वरूप पर प्रकाश डालिए। (300 शब्द)

उत्तर: मानवतावाद एक सामान्य दर्शन है जो मनुष्य को सृष्टि के केंद्र में रखता है तथा मनुष्य के जगत् या इहलोक को अलौकिक जगत् की तुलना में अधिक महत्व देता है। कुरुक्षेत्र में मानवतावादी दर्शन को विभिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है।

मानवतावाद का स्पष्ट विश्वास विश्ववाद या अंतर्राष्ट्रवाद में है। दिनकर कुरुक्षेत्र के अंतिम दो सर्गों में मनुष्यमात्र की बात करते हैं, किसी देश या स्थान विशेष की चर्चा नहीं करते।

प्रश्न: "'कुरुक्षेत्र' दिनकर के समसामयिक चिंतन का उत्तम निदर्शन है।" इस मान्यता के आलोक में कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालिये। **(300 शब्द)**

उत्तर: उत्तर: किसी भी युग की सार्थक और बड़ी रचना जीवन के ऐसे प्रश्नों से टकराती है जो अपनी प्रकृति में शाश्वत भी होते हैं और सामयिक भी। हिन्दी के राष्ट्रकवि दिनकर की कृति 'कुरूक्षेत्र' भी ऐसी ही रचना है जिसमें मूलत: युद्ध की समस्या को उठाया गया है जो मानव-सभ्यता के सामने खड़ा एक शाश्वत संकट तो रहा ही है; साथ ही, दिनकर जिस कलखण्ड के कवि है उस कालखण्ड के सामने भी एक ज्वलन्त प्रश्न बनकर उपस्थित रहा। कुरूक्षेत्र का रचना-समय द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर समय है जहाँ विश्व युद्ध की विभीसिका से जूझकर गुजरा है, साथ ही यह वह समय भी है जब भारत ब्रिटिश साम्राज्य से अपनी स्वतंत्रता हेतु संघर्षरत है। ऐसे समय में दिनकर ने कुरूक्षेत्र में युद्ध की प्रासंगिकता पर गहन चिन्तन प्रस्तुत किया है। साथ ही उन्होंने अन्य समसामयिक विचारधाराओं को भी प्रस्तुत किया है।

दिनकर बुनियादी रूप से तो युद्ध को अकाम्य मानते हैं किंतु अन्याय एवं अत्याचार को सहने को कायरता घोषित करते हैं। अपने अधिकारों की रक्षा तथा सामुदायिक हित में अन्याय के विरुद्ध युद्ध करने को वे नैतिक घोषित करते हैं-

पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।

दिनकर एक मानववादी रचनाकार हैं। इसलिए वे ईश्वर की जगह मनुष्य को केन्द्र में रखते हैं तथा पारलैकिकता एवं आध्यात्मिकता का खण्डन करते हुए इहलौकिकता को महत्व देते हैं-

ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन में
युधिष्ठिर जो कुछ भी है, इस मिट्टी में, जीवन में।

वे मार्क्सवादी विचारधारा के समतामूलक वितरण एवं न्याय के सिद्धांत का समर्थन करते हैं। उनकी स्पष्ट घोषणा है कि जब तक सभी मनुष्यों को सुख एवं न्याय की प्राप्ति नहीं होगी तब तक पृथ्वी पर शांति की स्थापना संभव नहीं है।-

जब तक मनुज-मनुज का यह, सुख-भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा।

पूंजीवादी व्यवस्था अपने शोषण तंत्र को निर्विन रूप से चलाए रखने के लिए 'जियो और जीने दो' का प्रतिपादन करती है। किंतु दिनकर इसे और भी बुरी स्थिति मानते हैं क्योंकि इसमें शोषित वर्ग अपने पक्ष में आवाज उठाने की स्थिति में भी नहीं होता-

हिलोडुलो मत हृदय रक्त अपना पीने दो
अटल रहे साम्राज्य शांति का जीयो और जीने दो।

दिनकर पर क्रायड के मनौविश्लेषणवाद का प्रभाव भी नजर आता है। 'उर्वशी' में तो यह स्पष्ट रूप में व्यक्त हुआ ही है। 'कुरूक्षेत्र' में भी इसकी अनुगूंज सुनाई देती है-

कोमलता की लौ व्रत के आलोकों से सुंदर है।

स्पष्ट है कि कुरुक्षेत्र दिनकर के समसामयिक चिंतन का उत्तम निदर्शन है।

असाध्य वीणा

प्रश्न: 'असाध्य वीणा' की काव्यभाषा पर प्रकाश डालिए। **(300 शब्द)**

उत्तर: अज्ञेय उन गिने-चुने साहित्यकारों में से हैं जो भाषा को जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। भाषा में भी अज्ञेय शब्द को अधिक महत्व देते हैं। उनके अनुसार - 'काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है।' इस दृष्टि से असाध्य वीणा एक महत्वपूर्ण रचना है। पूरी कविता में शब्द प्रयोग में एक

अज्ञेय ने सृजनात्मक शक्ति की परिभाषा असाध्यवीणा के माध्यम से स्वयं को शोध लेने या आत्मसाधना के माध्यम से दी है, जबकि मार्क्सवाद ने किसी भी सृजनात्मकता को समाज के उप उत्पाद के रूप में रेखांकित करते हुए उसे अभ्यास की वस्तु माना है। असाध्यवीणा में दिखाया गया है कि विभिन्न कलाकार अभ्यास के माध्यम से वीणा को नहीं साध सके क्योंकि उन्होंने कला को वस्तुनिष्ठ रूप में देखा जबकि वीणा साधक ने आत्मनिष्ठता एवं आत्मसाधना के माध्यम से वीणा को बजाया।

मार्क्सवाद परंपरा का खण्डन करती है तथा उसे शोषण के आधार के रूप में प्रतिष्ठित करती है वहीं अज्ञेय ने अपनी भारतीय परंपरा के अनुसरण के माध्यम से अध्यात्म एवं स्वसाधना को स्थापित किया है।

मार्क्सवादी लेखक शिल्प के रूप में सरल भाषा का प्रयोग करते हैं तथा प्रतीकों आदि को रचना के लिये अग्राहय मानते हैं। असाध्यवीणा में अज्ञेय ने यहाँ भी मार्क्सवाद को तोड़ते हुए एक उत्कृष्ट शिल्प साधना के माध्यम से रचना का निर्माण किया। जहाँ मार्क्सवादी रचनाकार रचना का उद्देश्य समाज में उथल पुथल एवं क्रांति को मानते हैं वहीं अज्ञेय ने असाध्यवीणा में इसको तोड़ते हुए सृजनात्मक संदर्भ में रचना की तथा उसका प्रभाव भी अलग-अलग व्यक्तियों पर अलग-अलग पड़ा।

स्पष्ट है कि 'असाध्यवीणा' मार्क्सवादी रचना-दृष्टि को खंडित करने का रचनात्मक उपक्रम है।

(यह उत्तर आलोचक रामेश्वर राय की पुस्तक 'कविता का परिसर' पर आधारित है।)

ब्रह्मराक्षस

प्रश्न: 'ब्रह्मराक्षस' में प्रयुक्त फैंटेसी शिल्प के स्वरूप एवं औचित्य पर प्रकाश डालिए। (300 शब्द)

उत्तर: फैंटेसी का प्रयोग मुख्यत: भाववादी, मनोविश्लेषणवादी तथा अतियथार्थवादी रचनाकार अपने मन में निहित अमूर्त भावों या अवचेतन मन: स्थितियों की अभिव्यक्ति हेतु करते रहे हैं। किंतु, ध्यातव्य है कि मुक्तिबोध ने फैंटेसी शिल्प का प्रयोग भाववादियों या मनोविश्लेषणवादियों की तरह नहीं किया। उन्होंने उनका शैल्पिक ढाँचा तो स्वीकार किया है किंतु उसका प्रयोग अपने प्रगतिवादी व यथार्थवादी कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए किया है।

ब्रह्मराक्षस कविता फैंटेसी शिल्प पर आधारित है। फैंटेसी शिल्प का प्रयोग मुक्तिबोध की कविताओं की चर्चित विशेषता रही है। इसमें मुक्तिबोध ने जटिल, बहुआयामी एवं गतिशील यथार्थ को सघनता से पकड़ने के लिए फैंटेसी शिल्प का प्रयोग किया है। इससे वे वास्तविकता के अनावश्यक वर्णन से बच सके हैं और अपनी बात को सीधे-सीधे व्यक्त कर पाये हैं। उदाहरण के लिए, कविता में समाज से विच्छिन्न बुद्धिजीवियों के त्रासद अंत की कल्पना वे इस प्रकार करते हैं-

''वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
औ' मर गया...''

फैंटेसी के कारण ही कविता में ब्रह्मराक्षस के अन्तर्दर्शन का यह वर्णन संभव हो पाया है -

''खूब ऊँचा एक जीना साँवला
उसकी अंधेरी सीढ़ियाँ .....
वे एक आभ्यंतर निराले लोक की।
एक चढ़ना औ' उतरना,
पुन: चढ़ना औ' लुढ़कना,
मोच पैरों में
व छाती पर अनेकों घाव।''

का उप-उत्पाद है। मुक्तिबोध जड़ मार्क्सवादी नहीं हैं। ब्रह्मराक्षस के शिष्य के रूप में वे स्वयं कविता में उपस्थित होकर ब्रह्मराक्षस के व्यक्तित्व का महत्व स्थापित करते हैं।

ब्रह्मराक्षस कविता इन मूल प्रश्नों के साथ कुछ अन्य प्रश्नों से भी टकराती है। ब्रह्मराक्षस का संघर्ष यही बताने के लिए है कि जो बुद्धिजीवी अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति नहीं करते, उनकी नियति त्रासद होती है-

''वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
औ' मर गया...''

ब्रह्मराक्षस कविता यह भी स्थापित करती है कि अतिरेकवादी पूर्णता का प्रयास विफल होने को बाध्य होता है। यहाँ मुक्तिबोध बहुत सीमित रूप में अस्तित्ववाद की इस मान्यता से सहमत दिखते हैं कि व्यक्तित्व में पूर्ण सामंजस्य कोरी कल्पना है तथा वेदना, अलगाव और संत्रास जैसी मन:स्थितियाँ प्रामाणिक व्यक्तित्व में उभरने वाली अनिवार्य स्थितियाँ हैं-

''वे भाव-संगत तर्क-संगत,
कार्य सामंजस्य-योजित,
समीकरणों के गणित की सीढ़ियाँ,
हम छोड़ दें उसके लिए।''

इस प्रकार 'ब्रह्मराक्षस' कविता में 'मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी व्यक्ति का आत्मसंघर्ष' अपने विभिन्न पहलुओं के साथ अभिव्यक्त हुआ है। मुक्तिबोध 'सजल उर शिष्य' की अवधारणा प्रस्तुत कर मार्क्सवाद के विपरीत छदम-तत्त्व को भी महत्त्व देते हैं। ऐसा मुक्तिबोध के अनुभवजन्य यथार्थ के कारण हुआ है। अत: ब्रह्मराक्षस कविता के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'प्रगतिवादी जीवनमूल्यों में आस्था रखते हुए भी मुक्तिबोध 'लकीर के फकीर' नहीं हैं और अनुभवजन्य यथार्थ पर अधिक यकीन रखते हैं।'

हरिजन गाथा, बादल को घिरते देखा है, अकाल और उसके बाद

प्रश्न: 'हरिजन गाथा' कविता के मूल मंतव्य पर प्रकाश डालते हुए उसकी प्रासंगिकता का निर्धारण कीजिए।
(225 शब्द)

उत्तर: जनकवि नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' कविता 1973 ई. में बिहार के 'बेलछी' नामक स्थान पर उच्च वर्णों की भीड़ द्वारा दलित वर्ग के कुछ व्यक्तियों को जिंदा जला देने की घटना की प्रतिक्रिया है। इस कविता का मूल उद्देश्य उच्च वर्णों के शोषक एवं दमनकारी चरित्र को उद्घाटित करना एवं दलित वर्ग में क्रांति-चेतना का संचार करना है।

कविता के पहले खंड में बेलछी काण्ड के संबंध में स्पष्ट किया गया है कि यह तीव्र भावावेग में हुई दुर्घटना नहीं थी, बल्कि इसके लिए लम्बे समय तक सरेआम तैयारियाँ की गई थीं। खतरनाक बात यह है कि लोकतांत्रिक भारत का शासनतंत्र वंचितों के पक्ष में नहीं, बल्कि शक्तिशाली वर्गों द्वारा खरीदा हुआ और नियंत्रित है।

कविता के दूसरे भाग में कृष्ण अवतार के मिथक और ज्योतिषी की भविष्यवाणी जैसी शिल्पगत युक्तियों के आधार पर वंचित वर्गों की संपूर्ण नई पीढ़ी में सामूहिक स्तर पर हिंसक क्रांति चेतना के विकास को दर्शाया गया है। कविता का अंत एक विशिष्ट बिंदु पर हुआ है जहाँ दलित समाज धर्म की चेतना से मुक्त होकर जीवन की वास्तविक स्थितियों को समझ चुका है, और अब वास्तविक संघर्ष के लिए तैयार है।

प्रश्न उठता है कि संवेदना की दृष्टि से यह कविता कितनी प्रासंगिक मानी जा सकती है? इसमें जिस क्रांति का ज़िक्र किया गया है, वह समाज की तत्कालीन व वर्तमान स्थितियों में संभव नहीं दिखाई पड़ती है। किंतु, साहित्यकार का दायित्व यथार्थ का वर्णन करके चुप हो जाना नहीं है; यथार्थ को बदलने की बेचैनी, छटपटाहट और प्रेरणा पैदा करना भी है। इस दृष्टि से कविता का कथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण व प्रासंगिक है।

कभी घुमक्कड़ यार-दोस्त से मिलकर कभी अकेले-
एक-एक दाने की खातिर सौ-सौ पापड़ बेले!

नागार्जुन के काव्य में सैद्धान्तिक आग्रह से इतर ऐसी कई आत्माभिव्यक्तियाँ उपस्थित हैं। 'रवि ठाकुर' कविता में नागार्जुन ने अपने जीवन के हालातों का हवाला देते हुए लिखा है-

पैदा हुआ था मैं-
दीन-हीन-अपठित किसी कृषक-कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने दौड़ते।।
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में।।

जीवन का यह दुख और अभाव नागार्जुन की कविता में बार-बार उभरता है- सामाजिक तथ्य के रूप में नहीं बल्कि सघन अनुभव के रूप में। पिता और पति के रूप में अपने कर्त्तव्यों का सम्यक निर्वाह न कर पाने की व्यथा अपराध-बोध के रूप में छलककर कविता बन गयी है-

हृदय में पीड़ा, दृगों में लिये पानी-
देखते पथ काट दी सारी जवानी!

नागार्जुन के काव्य में व्यक्तिगत अभावों और संघर्षों का विस्तार सामाजिक अन्याय, गरीबी और शोषण तक होता है और उनकी कविता परिवर्तन और न्याय की चेतना के लिये पाठक के मन को, समाज को संस्कारित करती है। उनकी कविताओं में हिंसक क्रांति का स्वर भी सुनाई अवश्य देता है पर वह उनकी काव्यानुभूति का मूल भाव नहीं है।

इस प्रकार इस मत से सहमत हुआ जा सकता है कि जिंदगी का अभाव और संघर्ष ही नागार्जुन के काव्य-संसार की जलवायु है और विक्षोभ उनकी कविता का केंद्रीय स्वर है।

व्याख्या - भाग

1. सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार।।

उत्तर: संदर्भ एवं प्रसंग: प्रस्तुत दोहा हिन्दी की भक्तिकालीन संतकाव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कबीर की रचनाओं के संग्रह कबीर ग्रंथावली के 'गुरु कौ अंग' से लिया गया है। संतकाव्य में गुरु के प्रति अनन्य कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। यह दोहा भी इसी भावबोध से युक्त है।

व्याख्या: कबीर कहते हैं कि सतगुरु की महिमा अपार है, उसकी कोई सीमा नहीं है। उसने अपनी इस महिमा के कारण मुझ पर असंख्य उपकार किए हैं। उसने हमारी आँखें खोलकर हमें उस असीम ब्रह्म का, जो स्थान और काल से परे है, जिसका न कोई आदि है और अंत, उसका दर्शन करा दिया है अर्थात् उसने माया से आबद्ध जीव को ज्ञानरूपी दृष्टि प्रदान कर ब्रह्मानुभूति को संभव कर दिया है।

काव्य-सौंदर्य:

- भक्तिकाल का सतगुरु आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था के अध्यापक से भिन्न है। सतगुरु वह है जो हमारे भीतर अपर्याप्तता का बोध उत्पन्न कर हमारे अहंकार का नाश करता है और हमारे भीतर ज्ञान की प्यास पैदा करता है। ऐसे गुरु के प्रति आनुभूतिक संबंध महसूस करते हुए कबीर कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हैं और बार-बार उसकी महत्ता का बखान करते हैं।
- कबीर के इस भाव पर वैष्णवी भक्ति-चेतना का प्रभाव लक्षित होता है।

इन पंक्तियों में दिनकर पर मार्क्स के साम्यवादी चिंतन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने इन पंक्तियों में मार्क्सवाद के समतामूलक वितरण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

दिनकर के मानवतावाद को ये पंक्तियाँ बहुत अच्छी तरह व्यंजित करती हैं।

भाषिक प्रवाह और काव्य-लय की दृष्टि से ये पंक्तियाँ उत्तम हैं तथा कवि का सजग शब्द-चयन इन्हें विशिष्ट बनाने में सफल हुआ हैं।

खण्ड-ख

गोदान

प्रश्नः गोदान के मेहता-मालती संवाद से उभरने वाली वैचारिकता की प्रस्तुति कीजिए। (225 शब्द)

उत्तरः मेहता और मालती 'गोदान' की शहरी कथा के प्रमुख चरित्र हैं। मालती आत्मविश्वास से भरी हुई चंचल प्रवृत्ति की युवती है, जबकि मेहता दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हैं। 'गोदान' में दो ऐसे प्रसंग हैं जहाँ मेहता और मालती के बीच विस्तार में बातचीत हुई है। उनके इन संवादों के माध्यम से प्रेमचंद ने अपनी प्रेम संबंधी वैचारिकता को बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

मेहता प्रेम को भावना नहीं बल्कि वस्तु के रूप में देखते हैं। वह प्रेम को अधिकारमूलक बताते हुए स्पष्ट रूप से कहते हैं 'प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूंखार शेर है।' वह प्रेम को प्राप्त करने के लिए हिंसा के प्रयोग को भी जायज ठहराते हैं।

मालती की प्रेम दृष्टि मेहता के प्रेम संबंधी विचारों के ठीक विपरीत है। वह छायावादी प्रेम की मान्यताओं के अनुरूप प्रेम को 'देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु' मानती है। उसके लिए प्रेम दैहिक जरूरत नहीं बल्कि हृदय की कोमल और पवित्र भावना है। वह मेहता की तरह प्रेम को अधिकार की नहीं बल्कि त्याग, समर्पण और उपासना की वस्तु समझती है, और इसीलिए वह 'देवसेना' और 'सोफिया' की तरह विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देती है। वह व्यक्तिगत हितों से परे विश्व कल्याण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाती है।

स्पष्ट है कि मेहता-मालती संवाद के माध्यम से प्रेमचंद छायावादी प्रेम के प्रति अपनी निष्ठा को स्थापित करते हैं तथा प्रेम के 'प्लेटोनिक' स्वरूप को अपना वैचारिक समर्थन प्रदान करते हैं।

प्रश्नः 'गोदान' अपने समय के ही नहीं, भविष्य के भारत की भी तस्वीर है-इस कथन की परीक्षा कीजिए। (300 शब्द)

उत्तरः गोदान 1936 में लिखा गया हिन्दी का पहला महाकाव्यात्मक उपन्यास है जो अपने समय के सभी पहलुओं को अपने विस्तृत कलेवर में तो समेटता ही है भविष्य की ओर संकेत भी करता है। गोदान जिस समय लिखा गया उस समय भारतीय समाज एक दोराहे पर खड़ा था। जहाँ एक ओर सामंतवाद और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में टूटन की प्रक्रिया जारी थी तो दूसरी ओर औद्योगीकरण और शहरीकरण पर सवार होकर पूंजीवाद दस्तक दे रहा था। गाँव की पीढ़ी का काम की खोज में शहर जाना और नई पूंजीवादी दुनिया से परिचित होना, प्रेमचन्द ने इस ऐतिहासिक संक्रमण का सटीक चित्रण गोदान में किया है और इस रूप में गोदान में उसके समय के भारत के साथ-साथ भविष्य के भारत का चित्र भी देखा जा सकता है।

1936 के भारत की दुविधाएँ गोदान में समग्र रूप से अभिव्यक्त हुई हैं। औद्योगीकरण के कारण गाँव के किसान शहरी मज़दूर बनने लगे थे। शोषण यहाँ भी था किंतु वहाँ गांव की तुलना में सामाजिक और आर्थिक मुक्ति की संभावना ज्यादा थी। यह पीढ़ी गांव लौटने को तैयार नहीं थी। उपन्यास में इस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व गोबर करता है।

गोदान के जमींदार वर्ग (राय साहब) को भी यह अहसास था कि जल्दी ही आज़ादी मिल जाने पर उनके वर्ग की समाप्ति हो जाने वाली है।

अतिरिक्त लगान की अधिकता, बेरोजगारी (शहरी मजदूर) तथा कार्य-स्थल पर होने वाले अलगाव व शोषण का विस्तृत चित्रण किया है। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का भी प्रस्तुतीकरण किया है, जैसे- थानेदार और पंचायत द्वारा किसानों का शोषण, जमींदार (राय साहब) द्वारा शोषण, लोकतंत्र का अमीर वर्ग तक सीमित होना इत्यादि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गोदान में अपने समय की सभी सामाजिक-राजनीतिक स्थितियाँ सघन रूप में चित्रित हैं।

गोदान की महाकाव्यात्मकता का एक अन्य प्रमाण यह है कि यह तत्कालीन समाज के सभी वर्गों के चरित्रों का एलबम है। ग्रामीण और शहरी जीवन के लगभग सभी वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र इसमें मौजूद हैं।

गोदान शिल्प और प्रभाव की दृष्टि से भी महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा का अधिकारी है। गाँव और शहर की समानांतर कथाएँ रखकर प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन के साथ शहरी जीवन को भी समेट लिया है। चरित्र योजना में उन्होंने ऐसी स्वाभाविकता रखी है कि चरित्र कठपुतलियाँ नहीं बने हैं, बल्कि यथार्थपरक होने के कारण सामाजिक जीवन के यथार्थ को सचमुच प्रतिबिंबित करते हैं।

गोदान का प्रभाव उत्कर्षमूलक है, जो महाकाव्यात्मक रचना की एक बड़ी विशेषता मानी गई है। गोदान को पढ़ने से पहले का पाठक उसे पढ़ने के बाद ठीक वही नहीं रहता वह अपनी चेतना में गुणात्मक अंतर महसूस करता है, होरी और होरी जैसे किसानों के प्रति संवेदना से भर उठता है।

स्पष्ट है कि गोदान महाकाव्यत्व के सभी तत्वों को धारण करता है। यही कारण है कि इसे हिन्दी का पहला महाकाव्यात्मक उपन्यास होने का गौरव हासिल है।

प्रश्न: कुछ आलोचकों की राय है कि गोदान में व्यक्त होने वाला यथार्थवाद मार्क्सवाद से प्रेरित समाजवादी यथार्थवाद है। आप इस मत से कहाँ तक सहमत हैं? युक्तियुक्त विवेचन कीजिये। (300 शब्द)

उत्तर: हिन्दी के कुछ आलोचकों का मत है कि गोदान में व्यक्त होने वाला यथार्थ मार्क्सवादी यथार्थ है। वस्तुत: गोदान में कई जगह ऐसे प्रसंग नजर भी आते हैं जहाँ मार्क्सवाद परिलक्षित होता है।

मार्क्सवादियों की प्रबल मान्यता समाज के आर्थिक ढांचे पर केंद्रित होती है जिसमें वह समानता के आदर्श की स्थापना पर बल देते हैं; गोदान की मुख्य समस्या भी आर्थिक अभाव तथा उसी से जुड़े अन्य दुष्चक्रों की है।

सामंती संरचना तथा पूंजीवादी सभ्यता में किसान एवं मजदूर का शोषण भी प्रेमचंद होरी तथा गोबर के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

मिर्जा खुर्शीद द्वारा कहा जाना कि "जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं दरअसल वह पूंजीपतियों के हाथों का उपकरण मात्र है।" भी मार्क्सवाद के उदार लोकतंत्र विरोधी धारणा का प्रमाण है।

कुछ आलोचक तो मेहता और मालती के विवाह न करने के निर्णय को 'लिविंग रिलेसनशिप' कहते हैं जो मार्क्सवादी विचारधारा में विवाह के स्थान पर देखा जाता है।

यह बात सच है कि मार्क्सवाद का प्रभाव 'गोदान' पर है किंतु प्रेमचंद इससे पहले भी किसान और मजदूरों के शोषण को प्रेमाश्रम, रंगभूमि जैसे उपन्यासों में उठाते आए हैं। इसी प्रकार मेहता-मालती का विवाह न करना आध्यात्मिक प्रेम का उदाहरण है जो मार्क्सवाद के विरुद्ध है। गोबर का सूदखोर हो जाना, मजदूरों की हड़ताल का विफल हो जाना इत्यादि प्रसंग ऐसे हैं जहाँ परंपरागत मार्क्सवाद का उल्लंघन हुआ है।

निष्कर्षत: गोदान पर मार्क्सवाद का प्रभाव तो है पर उसे मार्क्सवाद से प्रेरित मानना उचित नहीं है।

दिव्या

प्रश्न: "ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के पीछे यशपाल की विशेष रचना-दृष्टि रही है; 'दिव्या' के आधार पर इस रचना-दृष्टि की आलोचना कीजिए। (225 शब्द)

उत्तर: हर रचनाकार किसी विशिष्ट उद्देश्य से ऐतिहासिक कथावस्तु का चयन करता है। कुछ रचनाकार इतिहास को

उपन्यास में बावनदास की मृत्यु भारतीय राजनीति के नए अध्याय की शुरुआत है। बावनदास उन सभी मूल्यों का प्रतीक है जिन पर चलते हुए गांधी जी ने आज़ादी प्राप्त की है। ऐसे व्यक्ति की काबरा जैसे अपराधी तस्कर के हाथों मृत्यु होना अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। देखने की बात यह है कि काबरा कांग्रेस का पदाधिकारी है। तथा आज़ादी के बाद देश में कांग्रेस ही सत्ताधारी दल भी है। अत: यह हत्या प्रकारांतर से 'भारत के लोकतांत्रिक शासन द्वारा हुई है जिसने गांधीवादी मूल्यों को दो दिन में ही छोड़ दिया है।

कुल मिलाकर हम देख सकते हैं कि मैला आँचल समाजवादी मूल्यों के रूप में रेणु की राजनीतिक चेतना का वहन करता है।

महाभोज

प्रश्न: 'महाभोज' उपन्यास के नामकरण की सार्थकता पर विचार कीजिए। **(225 शब्द)**

उत्तर: महाभोज उस भोज को कहते हैं जो किसी की मृत्यु पर आयोजित किया जाता है। रचना के अंत में इस भोज के अनेक संकेत हैं। डी.आई.जी सिन्हा को पदोन्नति मिल गई है जिसके उपलक्ष्य में उनके घर पर एक पार्टी दी गई है। दूसरी तरफ, सत्ता के समक्ष अपनी कलम को गिरवी रखने वाले दत्ता बाबू पार्टी करने के लिए किसी खास स्थान पर जाने की तैयारी कर रहे हैं और तीसरी तरफ सुकुल बाबू सबसे बड़ी रैली होने की खुशी में जश्न मना रहे हैं। यह भोज 'बिसू' की मौत का नहीं है, न ही 'बिंदा' की संभावित मृत्यु का है अपितु यह महाभोज तो स्वतंत्र भारत की तथाकथित आज़ादी, लोकतांत्रिक व्यवस्था और नैतिकता की मौत का महाभोज है।

दा साहब इस सम्पूर्ण परिदृश्य के सूत्रधार हैं। उन्हीं की सूक्ष्म बुद्धि का परिणाम है कि जोरावर हत्यारा होकर भी सुरक्षित रहता है, दत्ता बाबू की आग उगलती कलम सरकार के पक्ष में शांत हो जाती है और डी.आई.जी. सिन्हा भी पदोन्नति पाकर आई.जी. बन जाते हैं। दूसरी ओर, जो लोग इस कुत्सित नाटक में शामिल होने को तैयार नहीं हैं, वे सब हाशिये पर फेंक दिए गए हैं। यही वह त्रासद स्थिति है जिसमें घुप्प अंधेरे के कारण दिशाएँ सूझनी बंद हो गई हैं। इसी स्थिति का प्रतीक है- 'महाभोज' नामकरण।

स्पष्ट है कि उपन्यास अपने समय के जिस विद्रूप और भयावह यथार्थ को व्यंजित करना चाहता है, उसके लिए 'महाभोज' से बेहतर नाम खोजना कठिन है। यह नाम न सिर्फ आज़ादी के सपनों की मृत्यु को अभिव्यंजित करता है बल्कि इस लाश को नोचकर खाने वाले गिद्धों का तफसील से परिचय भी कराता है।

प्रश्न: 'महाभोज' उपन्यास के 'दा साहब' का चरित्र-चित्रण कीजिये। **(300 शब्द)**

उत्तर: मन्नू भंडारी के उपन्यास महाभोज में कार्य-व्यापार और उपस्थिति की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र 'दा साहब' साठोत्तरी भारतीय राजनेताओं के प्रतिनिधि वर्ग-चरित्र हैं। ई.एम. फोर्स्टर की शब्दावली में वह एक 'समतल चरित्र' के रूप में अंकित किये गए हैं, जिसमें कोई परिवर्तन या विकास नहीं होता।

इस उपन्यास में 'दा साहब' प्रान्त के मुख्यमंत्री के रूप में चित्रित हुए हैं जो व्यक्तिगत दृष्टि से प्रांतीय राजनीति के कुशल एवं सफल संवाहक है तथा अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों के लिये ओछे से ओछा हथकण्डा अपनाने से भी नहीं हिचकिचाते।

'दा साहब' आद्यन्त दोहरे व्यक्तित्त्व के स्वामी हैं। पाखंड और ढोंग उनके चरित्र की मूल विशेषता है। बाह्य रूप से वह बहुत शिष्ट, सौम्य, चिन्तक तथा जनता के प्रति गहरे सरोकार रखने वाले दिखते हैं, लेकिन भीतरी धरातल पर एक भ्रष्ट, कुटिल, अवसरवादी, चालक और पैनी दृष्टि रखने वाले राजनेता हैं जो पद-लोलुपता के कारण विरोधियों को परास्त करने हेतु नई-नई राजनीतिक चालें चलता रहता है और उन्हें परास्त करने में सफल भी होता है। वे प्रशासन, पुलिस, मीडिया, राजनेताओं- सभी को वश में करने की कला जानते हैं और जो बिकते नहीं, उन्हें अपने रास्ते से हटा देते हैं। उपन्यास में मंत्री लोचन भैया तथा पुलिस ऑफिसर एस.पी. सक्सेना इसके उदाहरण हैं। अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिये वे अपराधियों

इस चर्चा के आधार पर निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में राजनीति के असली स्वरूप को पूरी बेबाकी के साथ उद्घाटित किया गया है।

प्रश्नः "महाभोज उपन्यास में हमारे वर्तमान समाज और राजनीति का नकारात्मक यथार्थ-वर्णन तो विश्वसनीय बन पड़ा है, लेकिन सकारात्मक पहलू हवाई आदर्श बन गया है"- इस टिप्पणी के संदर्भ में अपना तर्कपूर्ण पक्ष प्रस्तुत करें। **(225 शब्द)**

उत्तरः आकार में सीमित होने के बावजूद, 'महाभोज', समाज और राजनीति के यथार्थ-वर्णन में **'झूठा सच'** और **'राग-दरबारी'** जैसे उपन्यासों को टक्कर देता नज़र आता है। मन्नू भंडारी ने इस उपन्यास में उस समय की लगभग सभी सामाजिक और राजनीतिक विद्रूपताओं को विश्वसनीय तरीके से उभारा है।

जातीय संघर्ष, बुद्धिजीवियों की संवेदनहीनता, राजनीतिक अवसरवादिता, मीडिया का बिकाऊ होना, राजनीति में अपराधियों का बढ़ता वर्चस्व, लचर प्रशासनिक व्यवस्था और भ्रष्टाचार, वे सामाजिक और राजनीतिक सच हैं जिन्हें इस उपन्यास का कथ्य बनाया गया है।

लेखिका ने न सिर्फ यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण किया है, बल्कि यथार्थ को बदलने की कोशिश भी की है। उन्होंने 'बिसू', 'बिंदा', 'सक्सेना' जैसे चरित्रों का सृजन किया जो नकारात्मक ताकतों से लड़ते हुए बदलाव के लिए प्रयत्नशील हैं। **बदलाव की दुर्निवार, सम्मोहन भरी यह अग्निलीक** बिसू और बिंदा से होते हुए सक्सेना तक पहुँचती है और **सक्सेना का व्यक्तित्वांतरण** कर देती है।

कुछ आलोचकों ने 'सक्सेना' के व्यक्तित्वांतरण और लोचनबाबू के नैतिक मूल्यों पर प्रतिबद्ध रहने को हवाई आदर्श की संज्ञा दी है। दरअसल, सच तो यह है कि **'सक्सेना' का व्यक्तित्वांतरण** क्षणिक घटना न होकर **एक लंबे द्वंद्व का परिणाम है** और सक्सेना और लोचन बाबू के चरित्र भले ही **सुलभ यथार्थ** न हों, लेकिन **दुर्लभ यथार्थ** तो हैं ही।

प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

प्रश्नः 'प्रेमचंद की कहानियों में मनोविज्ञान का सुंदर प्रयोग हुआ है।' आप इस मत से कहाँ तक सहमत हैं? **(225 शब्द)**

उत्तरः मनोविज्ञान का प्रयोग प्रेमचंद की लगभग सभी कहानियों में दिखाई देता है। ऐसा करते हुए प्रेमचंद ने फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का आधार नहीं लिया है बल्कि अपने गहरे जीवनानुभवों के आधार पर विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों की मनःस्थितियों का अंकन किया है।

नारी मन के सूक्ष्म परतों का उद्घाटन प्रेमचंद की कई कहानियों में दिखाई देता है। 'नया विवाह' ऐसी ही कहानी है जहाँ बड़े उम्र के व्यक्ति से विवाहित स्त्री स्वाभाविक रूप से अपने हमउम्र व्यक्ति की ओर आकर्षित होती है।

दलित मनोविज्ञान में प्रवेश करते हुए प्रेमचंद ने दिखाया है कि उस समय जहाँ दलित वर्ग में एक ओर सदियों से चली आ रही हीनता-ग्रंथि थी तो दूसरी ओर उभरती हुई अधिकार व आत्मसम्मान की चेतना भी। 'सद्गति' कहानी में इसे देखा जा सकता है।

प्रेमचंद ने किसानों के मनोविज्ञान को भी कई कहानियों में प्रस्तुत किया है, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है- 'सभ्यता का रहस्य।' इसमें वे दिखाते हैं कि किसान के लिए अपनी प्रतिष्ठा कितनी महत्त्वपूर्ण होती है। इनके अतिरिक्त प्रेमचंद ने वृद्ध मनोविज्ञान तथा बाल मनोविज्ञान का भी सूक्ष्म चित्रण किया है। 'बूढ़ी काकी' वृद्ध मनोविज्ञान के चित्रण का श्रेष्ठ उदाहरण है।

'ईदगाह' का 'हामिद' सामान्य बाल मनोविज्ञान का अतिक्रमण करता है। हामिद अपनी 'बाल सुलभ' इच्छाओं का दमन करके दायित्वपूर्ण व्यवहार करता है जो वस्तुतः उसकी उम्र से असंगत है और उसकी आर्थिक स्थितियों का परिणाम है।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में मनोविज्ञान से प्रभावित कुछ शैलियों का प्रयोग भी किया है, जैसे चेतना प्रवाह शैली तथा आत्मकथात्मक शैली।

इस प्रकार यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद की कहानियों में मनोविज्ञान का सुंदर प्रयोग हुआ है।

बूढ़ी स्त्री की शारीरिक एवं मानसिक लाचारगी एवं परवशता का करुण चित्रण किया है। भारतीय परिवार में एक विधवा एवं बूढ़ी स्त्री की स्थिति कितनी दयनीय हो सकती है, 'बूढ़ी काकी' इसका ज्वलंत उदाहरण है।

कहानी में 'बूढ़ी काकी' अपने भतीजे और बहु द्वारा पूरी संपत्ति अपने नाम करवा लेने के बाद हाशिए पर ढकेल दी जाती है। वह उपेक्षा के दंश से अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है।

बूढ़ी काकी उम्र की जिस अवस्था में हैं उसमें उसकी इच्छाएँ बहुत सीमित है। कहानी में प्रेमचंद ने बुढ़ापे के मनोविज्ञान के तहत बुढ़ापे को बचपन का पुनरागमन कहा है। उनका यह भी कहना है कि बुढ़ापे में सारी इन्द्रियाँ शिथिल होकर महज एक वृत्ति पर केन्द्रित हो जाती हैं। बूढ़ी काकी के संदर्भ में इस वृत्ति का संबंध उन्होंने उनके चटोरपन को माना है। इच्छानुकूल, तृप्ति-भर भोजन न पाने पर वे मात्र गला फाड़-फाड़ कर रोती थीं। प्रतिवाद का यही उपाय उनके पास शेष था।

कहानी में भतीजे बुद्धिराम के बेटे के तिलक-समारोह में खाने की इच्छा से व्याकुल बूढ़ी काकी के साथ बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा के जिस अमानुषिक व्यवहार को प्रेमचंद ने मूर्त किया है उसके माध्यम से बुढ़ापे के यथार्थ से जुड़ी त्रासदी अपने पूरे उत्कर्ष में त्रास और करुणा की सम्मिलित अनुभूतियों के साथ मूर्तिमान हो गई है। कहानी में बूढ़ी काकी द्वारा जूठी पत्तलों में बचे भोजन को खाना पूरी स्थिति को अत्यन्त त्रासद बना देता है।

हालांकि अपनी परिणाति में यह कहानी आदर्शवाद की ओर अग्रसर हो गई है जहाँ बुद्धिराम और रूपा का हृदय-परिवर्तन हो जाता है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कहानी वृद्धावस्था का अत्यन्त मार्मिक अंकन करने में सफल हुई है।

एक दुनिया समानांतर

प्रश्नः 'भोलाराम का जीव' कहानी की संवेदना पर विचार कीजिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः नई कहानी को स्त्री-पुरुष संबंधों के दायरे से बाहर ले जाकर उसकी संवेदनात्मक परिधि को विस्तृत करने वालों कहानीकारों में हरिशंकर परसाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी कहानियों में राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं सामाजिक विद्रूपताओं के प्रति तीक्ष्ण एवं तीखी आलोचनात्मक व्यंग्य-दृष्टि लक्षित होती है जो उन्हें एक अलग ही पहचान देती है। 'भोलाराम का जीव' ऐसी ही कहानी है जिसमें व्यंग्य का मुख्य लक्ष्य सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था है। किंतु, हरिशंकर परसाई इसके चित्रण तक ही नहीं रूकते, वे व्यंग्य को मानवीय त्रासदी और करुणा तक ले जाते हैं और यह दिखाते हैं कि इस व्यवस्था में मनुष्य की क्या हालत हो चुकी है।

'भोलाराम का जीव' कहानी के प्रमुख चरित्र भोलाराम को रिटायर हुए पाँच वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु अभी तक उसकी पेंशन नहीं मिली है। इसी पृष्ठभूमि में हरिशंकर परसाई एक पौराणिक मान्यता को आधार बनाकर कहानी का आरंभ करते हैं-

"ऐसा कभी नहीं हुआ था...

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नर्क में निवास स्थान 'अलॉट' करते आ रहे थे- पर ऐसा कभी नहीं हुआ था।...भोलाराम के जीवन ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, पर अभी तक नहीं पहुँचा।"

इस स्थिति का कारण भ्रष्ट दफ्तरी-तंत्र में फंसी भोलाराम की पेंशन की फाइलें हैं। इसमें वह बुरी तरह जकड़ा हुआ है और उसे मुक्ति का कोई रास्ता नहीं दिखायी देता है। वह उन फाइलों को छोड़कर स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता- 'मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ। यहीं मेरा मन लगा हैं मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता।'

इस स्थिति के कारणों की खोज करते हुए हरिशंकर परसाई लालफीताशाही और भ्रष्टाचार में डूबी हमारी समूची व्यवस्था की निर्ममता, अमानवीयता और संवेदनशून्यता का व्यंग्यात्मक लहजे में पर्दाफाश करते हैं, जिसने आम आदमी के जीवन को दूभर बना दिया है, उसे असहाय और निरुपाय बना दिया है।

प्रश्नः 'एक दुनिया समानांतर' की कहानियाँ मूलतः 'संबंधों के टूटन' की कहानियाँ हैं- आप इस मत से कहाँ तक सहमत हैं? **(300 शब्द)**

नई कहानी मूलत: शहरी मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं की कहानी है जिसपर अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद जैसी विचारधाराओं का भी प्रभाव रहा है। इसमें संबंधों के टूटन और रिक्तता की व्यंजना एक नए शिल्प-विधान में की गई है।

'खोई हुई दिशाएँ' कहानी की मूल समस्या भी शहरी मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में पसरी एक बड़ी समस्या 'पहचान के संकट' की है। इस कहानी का मुख्य चरित्र चन्दर सोचता है- 'आसपास से सैकड़ों लोग गुजरते हैं पर कोई उसे नहीं पहचानता।'

बड़े शहरों में अकेलापन कितना ज्यादा है, इसकी तड़प दिखती है जहाँ चन्दर अंतत: महसूस करता है कि 'उसे और कुछ भी नहीं चाहिये... परिचय की एक माँग है।'

आत्मनिर्वासन या अजनबीपन की स्थितियाँ 'खोई हुई दिशाएँ' में दिखायी देती हैं जो नई कहानी की विशेषता है। कहानी में चन्दर को लगता है कि उसे 'एक अरसा हो गया, एक जमाना गुजर गया वह खुद अपने से नहीं मिल पाया।'

'खोई हुई दिशाएँ' नई कहानी के शैल्पिक ढाँचे का भी पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। इसके शिल्प की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है- कथानक का टूटना। इसमें न तो ज्यादा चरित्र हैं, न ही घटनाओं कीशृंखला।

भाषा-शैली के स्तर पर यह कहानी कविता जैसा प्रभाव धारण करती है। भाषा में प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है।

कुल मिलाकर 'खोई हुई दिशाएँ' नई कहानी की श्रेष्ठ कहानियों की दौर में शामिल होने योग्य कहानी है।

भारत दुर्दशा

प्रश्न: भारत दुर्दशा की अभिनेयता पर विचार कीजिए। **(300 शब्द)**

उत्तर: नाटक की पूर्ण सार्थकता उसके सफलतापूर्वक मंचित होने में ही है। नाटक की सफल अभिनेयता इस बात से निर्धारित की जा सकती है कि उसमें दृश्य विधान, अभिनय संकेत, वेश-भूषा, ध्वनि तथा प्रकाश जैसी व्यवस्थाओं के संकेत पर्याप्त मात्रा में दिए गए हैं अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त उसकी भाषा, चरित्र योजना, कथानक का विकास जैसे तत्व सफल मंचन हेतु सहायक हो पाते हैं या नहीं। इन्हीं आधारों पर भारत-दुर्दशा का विश्लेषण किया जा सकता है।

भारत दुर्दशा का दृश्य विधान सरल तथा प्रभावशाली है। छह अंकों के इस नाटक में छह ही दृश्य हैं, अत: दृश्यों की संख्या इतनी अधिक नहीं कि निर्देशक के लिए बार-बार दृश्य परिवर्तन करने की समस्या उठ खड़ी हो। दृश्य विधान सरल भी है। उदाहरण के लिए पहले अंक में वीथी का दृश्य है। दूसरे अंक में श्मशान, टूटे-फूटे मंदिर, बिखरी हुई अस्थियाँ और कौए, सियार व कुत्ते का दृश्य है। स्पष्ट है कि कुछ पर्दों व कुछ वस्तुओं के संग्रह से यह दृश्य योजना साकार हो सकती है।

नाटककार ने मंचन की सहजता हेतु अपनी ओर से कई प्रयास किए हैं। सबसे पहले अभिनय संकेतों को देखा जा सकता है। भारतीय नाट्य परम्परा में रंग संकेत देने की परम्परा कम रही है किन्तु भारतेन्दु ने कम से कम चार-पाँच प्रसंगों में अभिनय संकेत दिए हैं। उदाहरण के लिए-

आलस्य- ''मोटा आदमी जम्हाई लेता हुआ, धीरे-धीरे आता है।''

भारतेन्दु के समय मंचीय विधान पर्दे पर आधारित था। भारतेन्दु की कल्पनाशीलता का ही प्रमाण है कि उन्होंने एक स्थान पर प्रकाश व्यवस्था का सक्रिय प्रयोग किया है।

नाटक के प्रभावशाली मंचन में ध्वनि तत्व के प्रयोग की भूमिका प्रबल होती है। पार्श्व ध्वनियों के प्रयोग की विशेष परंपरा तो भारतेन्दु के सामने नहीं थी किंतु सीमित रूप से उन्होंने इसका भी प्रयोग किया है।

इन सभी तत्वों के साथ वेश-भूषा अर्थात् आहार्य अभिनय के प्रति भी भारतेन्दु ने ध्यान दिया है। उन्होंने विभिन्न चरित्रों की वेश-भूषा का स्पष्ट अंकन किया है। उदाहरण के लिए-

भारत- 'फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्द्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग'।

इन सब सावधानियों के साथ-साथ भारत दुर्दशा की रंगमंचीय सफलता में भाषायी सहजता, चुस्त संवाद योजना तथा मुहावरों, लोकोक्तियों और हास्य व्यंग्य के प्रयोग की भी बड़ी भूमिका है।

अरस्तवी परंपरा का प्रभाव संस्कृत नाट्य कला से अधिक है। दुखांत तथा कुछ-कुछ विरेचन जैसे भाव की उपस्थिति को सीमित अर्थों में त्रासदी कहा जा सकता है। थोड़े से रंग संकेत भी नजर आते हैं।

पारसी थियेटर का काफी प्रभाव है। इसमें गीतों की अधिकता है, गीतों में मनोरंजन के तत्व ज्यादा हैं। मंच विधान पर्दों पर आधारित है। कहीं-कहीं मनोरंजन में जो हल्कापन दिखता है वह भी पारसी थियेटर के प्रभाव से दिखता है।

भारत-दुर्दशा में लोक-नाट्य शैली का प्रभाव भी नजर आता है। जैसे- गीतों का प्रयोग; मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा धार्मिक कथनों को उद्धरण की तरह इस्तेमाल करना इत्यादि। कहीं-कहीं भाषा की ग्राम्यता भी नजर आती है।

भारत-दुर्दशा में प्रभावी रूप में स्वच्छंदतावादी परंपरा शैली भी नजर आती है। चरित्र योजना के अंतर्द्वंद्व के स्तर पर तो स्वच्छंदतावाद का असर नहीं दिखता है। पहले देशी का अपने आप से ही बात करना और उसी में ही अच्छा सुझाव देना स्वच्छंदतावाद की झलक दे सकता है। भारतेन्दु ने नियमों को काफी हद तक खारिज किया है। इस अर्थ में वे स्वच्छंदतावाद के रास्ते पर चलते हुए दिखते हैं- आत्म हत्या का दृश्य दोनों परंपराओं में वर्जित है पर वह दिखाया है। कथानक के विकास में न तो कार्यावस्थाएँ हैं, न ही चरण है। चरित्र निर्माण में भी न भारतीय सिद्धांतों का पालन है और न ही पश्चिमी सिद्धांतों का।

स्कन्दगुप्त

प्रश्नः कथा के धरातल पर ऐतिहासिक होते हुए भी स्कन्दगुप्त क्यों एक आधुनिक नाटक है? तार्किक उत्तर लिखिए। (300 शब्द)

उत्तरः अन्य रचनाकारों की भांति इतिहास के प्रति प्रसाद का नजरिया भी उपयोगितावादी था। प्रसाद ने 1928 में स्कन्दगुप्त नाम का ऐतिहासिक नाटक लिखा। परंतु इस नाटक के लेखन का उद्देश्य अतीत का गौरवगान करना नहीं था बल्कि प्रसाद ऐतिहासिक परिस्थिति में आधुनिक समस्याओं को रखकर उनका हल सुझाना चाहते हैं। इसी कारण यह नाटक ऐतिहासिक कलेवर का होते भी मूल्यबोध के स्तर पर आधुनिकता को धारण करता है।

स्कन्दगुप्त का ऐतिहासिक ढांचा सिर्फ इसलिए रखा गया है क्योंकि प्रसाद इतिहास के प्रेरणा लेना चाहते हैं। यदि इस ऐतिहासिक ढांचे को 1928 के भारत पर आरोपित कर दें तो ऐतिहासिकता का आवरण हटने लगता है और राष्ट्रीय चिंताएँ केंद्र में आ जाती हैं। स्कन्दगुप्त स्वाधीनता संग्राम के नेता का प्रतीक है। पुष्यमित्र और हूण विदेशी आक्रांताओं अर्थात् ब्रिटिश सत्ता के प्रतीक हैं। बौद्ध-ब्राह्मण संघर्ष उस समय की हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता की अभिव्यक्ति है जबकि मालव और गुप्त साम्राज्य का संबंध आधुनिक क्षेत्रवादी प्रवृत्तियों को नकारने की कोशिश है। इन प्रतीकों के आधार पर देखने पर नाटक स्पष्ट रूप से आधुनिक नजर आता है। इस नाटक की पृष्ठभूमि भले ही ऐतिहासिक हो लेकिन समस्याएँ आधुनिक हैं।

स्कन्दगुप्त नाटक का नायक स्कन्दगुप्त राजनीतिक दुरभिसंधियों से त्रस्त है। राजमाता तथा उसका सौतेला भाई उसे शासन से जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी हटाना चाहते हैं। आधुनिक समाज में भी किसी भी तरह सत्ता प्राप्त करने की यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इसमें दर्शायी गई बौद्ध-हिन्दू की सांप्रदायिकता की समस्या हिन्दू मुस्लिम सांप्रदायिकता के रूप में विद्यमान है और देश का एक विभाजन कराने के बाद भी पूर्णतः शांत नहीं हुई है।

देश में क्षेत्रवाद की समस्या आज पहले से कहीं भीषण रूप धारण कर रही है प्रसाद ने अपने नाटक में केंद्र-राज्य के समरसतापूर्ण संबंधों के रूप में इसके समाधान का उपाय सुझाया है।

स्कन्दगुप्त में इन सभी आधुनिक समस्याओं की उपस्थिति व इनके समाधान के संकेत तो इस नाटक को आधुनिक बनाते ही हैं। परंतु इस नाटक को आधुनिक बनाने वाला सबसे बड़ा तत्व है इस नाटक में प्रसाद द्वारा प्रतिपादित जीवन दृष्टि प्रसाद अपने नाटक के माध्यम से जीवन के वास्तविक उद्देश्य भी प्रतिपादित करते हैं। मानव आज भी आंतरिक विषमताओं का शिकार है। जैसे-जैसे वह अपनी मूल प्रवृत्तियों से कटता जा रहा है वैसे-वैसे यह आंतरिक विषमता बढ़ती जा रही है। इस विषमता के उत्तर के रूप में प्रसाद समरसता युक्त आनंदमूलक शांत रस को प्रस्तावित करते हैं।

संवेदना के साथ-साथ शिल्प के स्तर पर भी स्कन्दगुप्त एक आधुनिक नाटक है। इस प्रकार सभी कसौटियों पर कथा के धरातल पर ऐतिहासिक होते हुए भी स्कन्दगुप्त एक आधुनिक नाटक है।

प्रश्नः 'देवसेना' हिन्दी नाट्य परंपरा की अविस्मरणीय चरित्र है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? सहमति या असहमति के कारण बताइए। **(225 शब्द)**

उत्तरः देवसेना 'स्कंदगुप्त' नाटक की सर्वप्रमुख नारी चरित्र है और हिन्दी नाटक की विकास-यात्रा में सृजित सर्वाधिक सशक्त नारी चरित्रों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रसिद्ध आलोचक नगेन्द्र के अनुसार, *"ऐतिहासिक नाटकों की सर्वोत्तम नायिका देवसेना प्रसाद की चरित्र सृष्टि की कोमल कल्पना की अमर उपज है।"* वस्तुतः देवसेना के चरित्र की विभिन्न विशिष्टताएँ उसे हिन्दी नाट्य परंपरा का अविस्मरणीय चरित्र बना देती हैं जो इस प्रकार हैं-

देवसेना एक भावनात्मक नारी है। स्कंदगुप्त एवं विजया के प्रेम को जानकर यही भावुकता आध्यात्मिकता में बदल जाती है। वह विजया के रास्ते में बाधा नहीं बनना नहीं चाहती, यह उसके चरित्र की उदात्तता है-

"विजया के स्थान को मैं कदापि ग्रहण न करूंगी। उसे भ्रम है, यदि वह छूट जाता"।

वह सारे दुख मन में समेटे चुपचाप अलग हो जाती है। यह प्रेम का औदात्य है। अन्त तक उसे यही दुख रहता है कि विजया उसे गलत समझती है। प्रेम के इस वेदनापूर्ण समय में भावुकता आध्यात्मिकता में एवं वैयक्तिकता सामाजिकता में बदल जाती है।

देवसेना हृदय को नियंत्रित करना जानती है। वह अपने दुख को संगीत में भुला देना जानती है।

"..... चित्त उत्तेजित करता है, बुद्धि झिड़कती है, कान कुछ सुनते ही नहीं। मैं सबको समझाती हूँ, विवाद मिटाती हूँ।"

नाटक के उत्तरार्द्ध में प्रेम की अपूर्णता की वेदना में होने के बावजूद वह लोकजीवन से संपृक्त है। वह अपने सामाजिक कार्यों में रत है। यहाँ तक कि निम्न व्यक्तियों की उक्तियों के भय से भी अपने कर्त्तव्य से नहीं हिलती। वह पर्णदत्त से कहती है-

"क्या है बाबा! क्यों चिढ़ रहे हो। जाने दो, जिसने नहीं दिया, उसने अपना; कुछ तुम्हारा तो नहीं ले गया।"

देवसेना के जीवन का चरम मूल्य त्याग है। त्याग ज़रूरत के समय आदर्श है। देवसेना कई जगह ऐसे त्याग करती है जहाँ परिस्थितियाँ त्याग नहीं मांगतीं। विजया की आत्महत्या, आर्यावर्त की विजय के बाद स्कन्दगुप्त, देवसेना का मिलन संभव था किन्तु देवसेना त्याग के पक्ष में कहती है -

"कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है। सम्राट्! यदि इतना भी न कर सके तो क्या! सब क्षणिक सुखों का अंत है। जिसमें सुखों का अन्त न हो, इसलिये सुख करना ही न चाहिये। मेरे जीवन के देवता! और उस जीवन के प्राप्य! क्षमा!"

दरअसल यह त्याग उस छायावादी मानसिकता से निकला है जो मिलन से मानसिक वेदना को अधिक महत्व देती है।

आषाढ़ का एक दिन

प्रश्नः 'आषाढ़ का एक दिन' की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए। **(300 शब्द)**

उत्तरः मोहन राकेश के शब्दों में 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक 'आज का' तथा 'आज के लिये' है। इस नाटक के प्रासंगिक होने की मूल वजह इस नाटक की संवेदना का देश-काल की सीमा से परे होना है। इसमें उठायी गई समस्याएँ जितनी प्रासंगिक कालिदास के समय और इस नाटक को लिखे जाते समय थीं, उससे कहीं ज्यादा आज हैं।

रचना के मूल में जो व्यक्तित्व-विभाजन और विसंगतिपूर्ण जीवन की समस्याएँ हैं, वे आज के पूंजीवादी विकास के मॉडल में और भी विकराल रूप धारण कर चुकी हैं। औद्योगीकरण तथा शहरीकरण ने लोगों को गाँव से शहर की ओर जाने के लिये मजबूर कर दिया है। ये सभी लोग शहर के अजनबीपन में आत्मनिर्वासित जीवन जीने को अभिशप्त हैं।

नाटक में सत्ता और सृजन के जिस द्वंद्व को उजागर किया गया है वह दरअसल हर युग में मौजूद रहा है। आधुनिक समय में भी 'निराला' और 'मुक्तिबोध' जैसे साहित्यकारों को सत्ता के चंगुल से अपनी सृजनशीलता को बचाए रखने के लिये संघर्ष करना पड़ा है।

आषाढ़ का एक दिन मोहन राकेश का पहला नाटक है और उन्होंने इसके माध्यम से हिन्दी रंगमंच को खोजना चाहा है। प्रसाद मानते थे कि नाटक के लिये रंगमंच होना चाहिये जबकि मोहन राकेश ने खुलकर माना है कि उनका नाटक रंगमंच के लिये है। भूमिका के अंतिम वाक्य में वे कहते हैं कि- "संभव है यह नाटक उन (हिन्दी रंगमंच की) संभावनाओं की खोज में कुछ योग दे सके।"

आषाढ़ का एक दिन में मोहन राकेश ने इस प्रतिज्ञा को साकार कर दिखाया है। निम्नलिखित तथ्य उनकी प्रयोगशीलता की पुष्टि करते हैं:

(क) नाटक में तीन अंक हैं किंतु दृश्य एक ही है और वह दृश्य भी अपनी योजना में महंगा नहीं सस्ता है। राकेश चाहते तो उज्जियिनी या काश्मीर का दरबार दिखा सकते थे। किंतु ऐसा करते ही दृश्य योजना महंगी हो जाती जो उनकी प्रतिज्ञा के विपरीत होता।

(ख) मानव तत्व का सघन प्रयोग है अर्थात् अभिनय की बारीकियों पर लेखक ने बहुत बारीकी से ध्यान दिया है। अधिकांश प्रसंगों में अभिनय की बारीकियों से ही सारा भाव सम्प्रेषित कर दिया गया है।

(ग) ध्वनियों का प्रयोग इतने सूक्ष्मतम रूप से किया गया है कि कोई भी नाटक इसकी बराबरी नहीं कर सकता। जैसे- बादलों का गर्जना, तनाव दिखाने के लिये घोड़े के टापों की आवाज का प्रसंग इत्यादि।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' के माध्यम से हिन्दी का एक मौलिक रंगमंच स्थापित करने का भरपूर प्रयास किया और इसमें काफी सफल भी रहे।

चिंतामणि

प्रश्नः रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'श्रद्धा-भक्ति' के प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालिए। (300 शब्द)

उत्तरः अपने सर्वश्रेष्ठ मनोविकारपरक निबंध श्रद्धा-भक्ति में आचार्य शुक्ल ने मानवीय जीवन के दो रमणीय भावों श्रद्धा और भक्ति का सुदीर्घ विश्लेषण किया है। श्रद्धा की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि ''किसी मनुष्य में जनसाधारण से विशेष गुण व शक्ति का विकास देख उसके संबंध में जो एक स्थायी आनंद पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं।'' इसी बिन्दु पर आचार्य शुक्ल प्रेम और श्रद्धा के बीच मूल अंतर यह बताते हैं कि प्रेम के लिए किसी निश्चित वस्तुगत कारण की आवश्यकता नहीं है, वह केवल चेहरे की सुंदरता से भी हो सकता है, इसके विपरीत, श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात होता है तथा गुणों और कर्मों की अधिकता ही उसका कारण होती है। श्रद्धा और प्रेम के महीन अंतरों का विस्तृत विश्लेषण करने के पश्चात् आचार्य शुक्ल श्रद्धा के तीन प्रकार निश्चित करते हैं - प्रतिभा संबंधिनी श्रद्धा, शील संबंधिनी श्रद्धा तथा साधन-संपत्ति संबंधिनी श्रद्धा, जिनमें शील संबंधिनी श्रद्धा सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका संबंध उन मूल्यों से है जिनके व्यक्त होने से समाज सुरक्षित, सुंदर और संपन्न होता है।

प्रेम और श्रद्धा की संपूर्ण व्याख्या के बाद आचार्य शुक्ल श्रद्धा और भक्ति के संबंध की व्याख्या करते हैं। उनकी यह धारणा है कि ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।'' उनके अनुसार श्रद्धा का मूल संबंध कर्मों से है। जब श्रद्धालु महान कर्मों के अतिरिक्त श्रद्धेय के शेष जीवन के प्रति भी भावुक होने लगता है तो श्रद्धा के साथ प्रेम संयुक्त हो जाता है और इसी अवस्था का नाम भक्ति है। भक्ति की चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल सगुण भक्ति के महत्त्व की भी स्थापना करते हैं।

शुक्ल जी के प्रत्येक भावपरक निबंध की तरह यह निबंध भी भावों का गहरा संबंध सामाजिक हित और अहित से जोड़ता है। श्रद्धा का लाभ क्या है, इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं कि ''हमारी प्रसन्नता से उसे (श्रद्धेय को) अपने सामर्थ्य का बोध हो जाता है और उसका उत्साह बढ़ता है।" शुक्ल जी आडंबर, अंध-श्रद्धा, बाजार आदि के परिप्रेक्ष्य में श्रद्धा और भक्ति जैसे भावों पर उत्पन्न खतरे को भी रेखांकित करते हैं।

समग्रतः 'श्रद्धा-भक्ति' निबंध किसी मनोवैज्ञानिक के लेखन की भांति केवल मनोभावों का अर्थ नहीं बताता बल्कि वैज्ञानिक विश्लेषण को भावनाओं के स्तर पर लाकर पाठक को श्रद्धा और भक्ति से संपन्न भी करता है।

(ii) *''यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण।''*

शुक्ल जी ने काव्यशास्त्रीय निबंधों में भी अपनी मौलिकता का पर्याप्त परिचय दिया है, सिर्फ संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा का निर्वाह नहीं किया है-

(क) उन्होंने 'रसवाद' को स्वीकार किया है किंतु उसे लोकमंगल के भाव से जोड़ दिया है जिसे 'रस की लोकमंगलवादी अवधारणा' कहते हैं।

(ख) उन्होंने भामह जैसे अलंकारवादी आचार्यों तथा केशव जैसे बुद्धि प्रेरित वक्रता के प्रयोक्ताओं पर चोट की है, क्योंकि ये सभी तत्व कविता में साधक नहीं, बाधक ही होते हैं। वक्रता पर अत्यधिक बल देने के कारण उन्होंने भारतीय चिंतक कुंतक व पाश्चात्य विचारक क्रोचे पर चोट की है।

(ग) उन्हें पश्चिम के जो सिद्धांत अच्छे लगे उन्होंने उनका स्वागत किया, जैसे- बिंब की धारणा।

निष्कर्ष: स्पष्ट है कि 'चिंतामणि' के निबंधों में शुक्ल जी का मौलिक व्यक्तित्व बार-बार उभरता है। इस दृष्टि से यह मानना पड़ता है कि वे न सिर्फ 'मनु मार्ग' के अनुयायी हैं बल्कि हिंदी की मुनि परंपरा के प्रस्थान बिंदु भी हैं।

निबंध निलय

प्रश्न: 'पांडित्य और लालित्य का विलक्षण संयोग आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध-कला की अन्यतम विशेषता है।' इस कथन के संदर्भ में 'कुहज' निबंध का विवेचन कीजिए। (300 शब्द)

उत्तर: विद्वता तथा सहृदयता का समन्वय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों की अद्वितीय विशेषता है। विद्धता के कारण जहाँ उनके निबंधों में पांडित्य की छटा दिखाई देती है, वहीं सहदयता के कारण लालित्य का प्रवाह। किन्तु, उनकी निबंध-कला की विशेषता उनके निबंधों में इन दोनों की उपस्थिति नहीं है, बल्कि उनके एक-दूसरे में अन्तर्लयित होने में है। ललित-शैली में गंभीर से गंभीर पांडित्यपूर्ण बात कहने में और पांडित्यपूर्ण बात को उनका निबंध-लेखन कौशल देखते ही बनता है।

कुटज शब्द के अर्थ निर्धारण के क्रम में वे मिथक, संस्कृत साहित्य, भाषा विज्ञान, लोक प्रचलन इत्यादि की विद्वतापूर्ण व्याख्या में जाते हैं। उदाहरण के लिए कुटज के अर्थ निर्धारण में द्विवेदी जी 'कूट' से निर्मित कुछ शब्दों के पीछे की लोक-कथाओं के अर्थ का उद्घाटन करने का भी प्रयास करते हैं। वे लिखते हैं ''कुटज अर्थात् जो कूट में पैदा हुआ हो। कुट घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी कुटज कहे जाते हैं। संस्कृत में कुटहारिका और कुटकारिका दासी को कहते हैं। अगस्त्य मुनि भी नारद जी की तरह दासी के पुत्र थे क्या?'' कुटज के अर्थ-निर्धारण के उपरान्त द्विवेदी जी कुटज की अपराजेय जीवनी शक्ति की चर्चा करते हुए कुटज के जीवन को मानव जीवन हेतु एक जीवन संदेश और जीवन दर्शन में विकसित कर देते हैं। कुटज का जीवन दो जीवन धर्म प्रस्तावित करता है- एक, अपार जिजीविषा और दूसरा, उद्देश्यपूर्ण जीवन।

कुटज की जीवनी-शक्ति और जीवन-संघर्ष को वे प्रशंसा के भाव से देखते हैं। कुटज एकदम एकांत में संसाधनों के अभाव में रहते हुए भी जीवंत बना रहता है। उसे मानव जीवन के लिए आदर्श बताते हुए लालित्यपूर्ण भाषा में द्विवेदी जी लिखते हैं, "कितनी कठिन जीवनी शक्ति है! प्राण ही प्राण को पुलकित करता है, जीवन-शक्ति ही जीवनी-शक्ति को प्रेरणा देती है।"

कुटज के जीने का यह ढंग द्विवेदी जी के अनुसार मनुष्य के लिए एक आदर्श है। कुटज जैसे मनुष्य को यह संदेश दे रहा हो कि ''जीना चाहते हो? कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर, अवकाश की लहरों में झूमकर उल्लास खींच लो।''

किंतु अपने पांडित्य का परिचय देते हुए द्विवेदी जी मानव जीवन के संदर्भ से यहीं एक नया प्रश्न उपस्थित करते हैं। क्या जीने की प्रचंड इच्छा ही जीवन का उद्देश्य है? पश्चिमी विचारकों हॉब्स और हेल्वेशियस के हवाले से द्विवेदी जी कहते

शर्मा जी सिद्ध करते हैं कि तुलसी इस जगत की प्रत्यक्षता को स्वीकार करने वाले कवि हैं। शंकर के मायावाद के प्रति उनका विरोध इस जगत की समस्याओं एवं सच्चाइयों की स्वीकृति का प्रतीक है। शर्मा जी इसे पूर्णतः वस्तुवादी जीवन दर्शन के निकट मानते हैं।'' तुलसीदास का बचपन घोर गरीबी में बीता था, इसीलिए उनका साहित्य भूख, गरीबी, दरिद्रता, दुख जैसी ठोस भौतिक समस्याओं को पहचानने वाला मानववादी साहित्य है।

तुलसी राजनीतिक प्रसंगों में भी सामंत विरोधी चेतना प्रस्तुत करते हैं। उनके 'राम' लोककल्याणकारी राज्य के प्रतीक हैं।

निष्कर्ष के रूप में रामविलास शर्मा तुलसी को भारतीय जनजागरण का सर्वश्रेष्ठ कवि कहते हैं। जातीय एकता व जातीय संगठन की दृष्टि से वे हिन्दी के सर्वाधिक प्रभावशाली कवि है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि एक मार्क्सवादी आलोचक एवं निबंधकार होते हुए भी रामविलास शर्मा तुलसी-साहित्य का मूल्य-निर्धारण करते हुए सामान्य मार्क्सवादी अवधारणा का अतिक्रमण करते हैं।

व्याख्या-भाग

1. तो क्या ये मेरे मोटे होने के दिन हैं? मोटे वह होते हैं जिन्हें न रिन का सोच होता है न इज्जत का। इस ज़माने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन में क्या सुख? सुख तो जब है कि सभी मोटे हों।

उत्तर: संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचंद द्वारा 1936 ई. में रचित हिन्दी के पहले महाकाव्यात्मक उपन्यास गोदान से लिया गया है। गोदान प्रेमचंद की लेखन यात्रा की सिद्धावस्था है जहाँ वे आदर्शवाद की छाया से निकलकर यथार्थवाद को पूरी तल्खी के साथ स्वीकार कर सके हैं। ये पंक्तियाँ उसी यथार्थवादी नज़रिये को सूचित करती हैं।

प्रसंग: ये पंक्तियाँ गोदान के अंतिम हिस्से से ली गई हैं जहाँ होरी का भाई हीरा लौट कर आ गया है। यह होरी और हीरा का पारस्परिक संवाद है। जब हीरा होरी से कहता है कि 'भैया तुम बहुत दुबले हो गये हो' तो होरी उसके उत्तर में ये पंक्तियाँ कहता है। वस्तुतः इन पंक्तियों के माध्यम से प्रेमचंद ने अपने विचारों का प्रक्षेपण किया है।

व्याख्या: होरी इन पंक्तियों में 'मोटेपन' का प्रतीक लेकर समाज की आर्थिक विषमताओं पर व्यंग्य करता है। वह कहता है कि हमारे समाज में वही व्यक्ति मोटा या स्वस्थ हो सकता है जिसने समाज के कुल आर्थिक संसाधनों में अपने नैतिक हिस्से से ज़्यादा संसाधनों पर कब्ज़ा कर लिया है। दरअसल, इस तरह का मोटापन एक किस्म की बेशर्मी है क्योंकि दूसरों का खून चूसकर समृद्ध होना किसी भी आत्मसम्मान से युक्त व्यक्ति के लिए संभव नहीं। हमारे समाज में साहूकार, सूदखोर, ज़मींदार और पूंजीपति जैसे वर्गों के लोग ही समृद्ध हैं और सच देखा जाए तो इन सभी की समृद्धि गरीबों के शोषण पर टिकी है। ऐसी संपन्नता में कोई वास्तविक सुख नहीं है जो दूसरों को विपन्न बनाकर जन्म लेती है। असली संपन्नता तो वह होती है जिसमें सारा समाज समृद्ध हो, सभी की मानवीय ज़रूरतें पूरी होती हों।

विशेष

- इन पंक्तियों के माध्यम से समाजवादी दृष्टिकोण उभारा गया है।
- इन पंक्तियों में प्रतीकात्मक शैली का सुंदर प्रयोग किया गया है। 'मोटेपन' के प्रतीक के माध्यम से विषमतामूलक अर्थव्यवस्था में निहित शोषण और दमन को बखूबी उभारा गया है।
- सूत्रभाषा का भी प्रभावशाली उपयोग हुआ है-"सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है।"
- भाषा आम हिन्दुस्तानी है जिसमें तद्भव शब्दों के साथ 'इज्ज़त' और 'बेहयाई' जैसे फारसी परंपरा के वे शब्द भी शामिल हैं जो 'हिन्दुस्तानी' के भीतर रच बस गए हैं।
- ये पंक्तियाँ आज के भारत में और ज्यादा प्रासंगिक होकर उभरती हैं। एक ओर हर वर्ष अरबपतियों की संख्या बढ़ती जा रही है तो दूसरी ओर आंध्र प्रदेश, विदर्भ और पंजाब के किसानों को कर्ज जाल में फंसकर आत्महत्या करनी पड़ती है।

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456